ईश्वरमठ सन् १९६८ अगस्त

वर्ष ४२] [अङ्क ८

मुमुक्षुभवन

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर भाद्रपद २०२५, अगस्त १९६८

विषय — पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १३.३५ (१५ शिलिंग) } जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥ { साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर
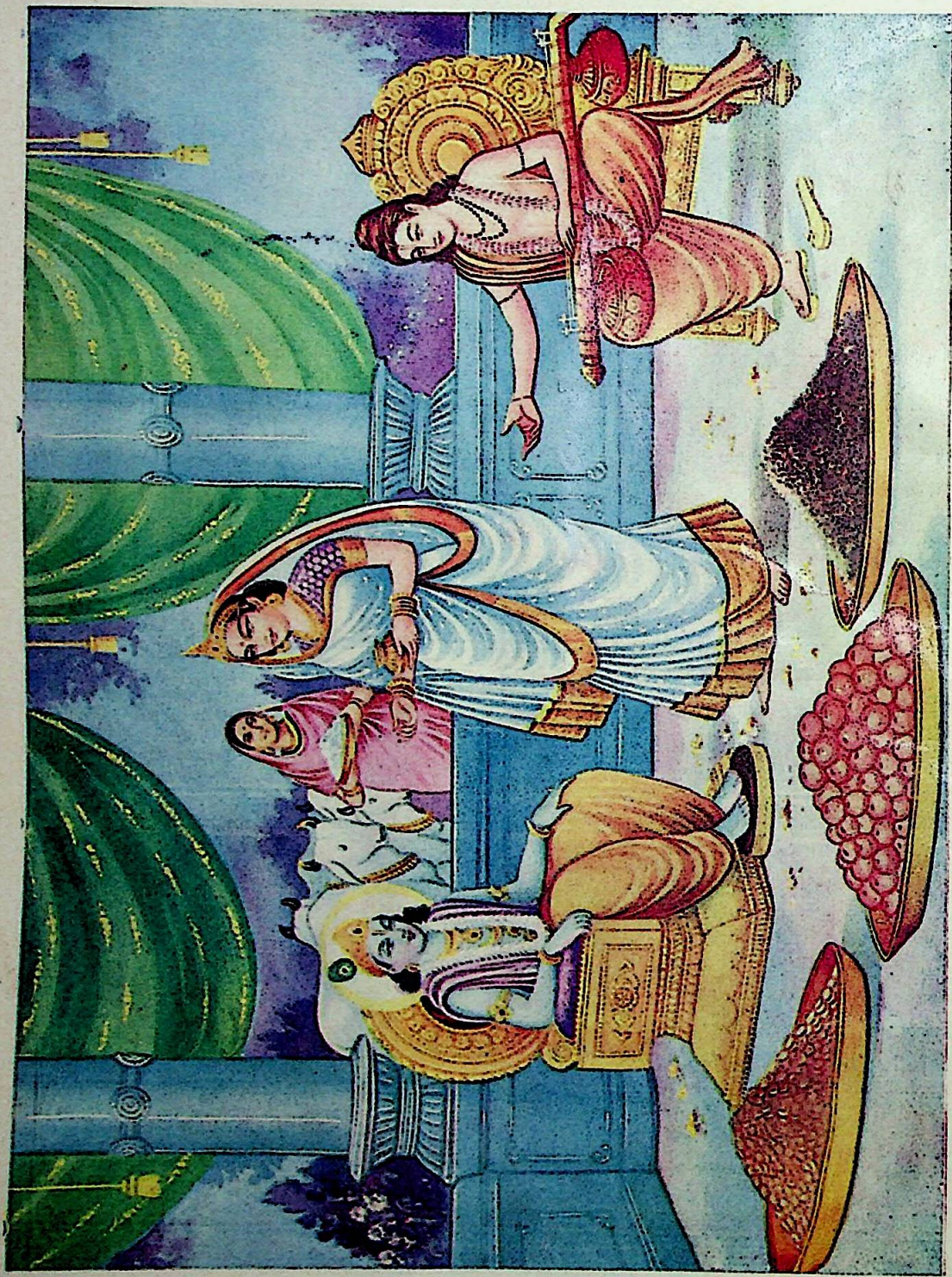
सत्यभामाजीके द्वारा नारदजीको श्रीकृष्णका दान

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

वर्ष ४२ } गोरखपुर, सौर भाद्रपद २०२५, अगस्त १९६८ { संख्या ८
पूर्ण संख्या ५०१

सत्यभामाजीके द्वारा नारदजीको श्रीकृष्णका दान

चिन्तन किया श्यामने, मुनिवर नारद आ पहुँचे तत्काल ।
पूजा विधिवत् कर पहनायी मुनि-सुकंठमें सुरभित माल ॥
भोजन रुचि-अनुकूल कराया, सत्याने पति-आज्ञा जान ।
धेनु सहस्र स्वर्णमणि पर्वत सह कर दिया कृष्णको दान ॥
मुनिने हँसकर कहा—'हो गये अब हरि ! तुम मेरे आधीन ।
आज्ञा पालन करो—' किया स्वीकार कृष्णने समुद अदीन ॥
तब मुनिने सवत्स कपिला गौको निष्क्रयका मान विधान ।
मुक्त किया हरिको, फिर पाया उनसे मनचाहा वरदान ॥

(हरिवंश० विष्णुपर्व अ० ९६)

याद रक्खो—भगवान्‌की गुणमयी माया बड़ी ही दुस्तर है, उससे तर जाना बड़ा ही कठिन है, परंतु भगवान्‌के ही शरण होकर उनका भजन करनेपर मायासे सहज ही तरा जाता है। भगवान्‌ने कहा है—

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।
(गीता ७ । १४)

याद रक्खो—भगवान्‌की प्राप्ति बड़ी कठिन है, पर भगवान्‌में मन-बुद्धि लगाकर जो सदा-सर्वदा भगवान्‌का स्मरण करता है, अन्तकालमें उसको भगवान्‌की ही स्मृति होती है और वह निस्संदेह भगवान्‌को ही प्राप्त होता है। भगवान्‌ने कहा है—

मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ (गीता ८ । ७)

याद रक्खो—भगवान्‌का प्राप्त होना बहुत ही दुर्लभ है, पर जो मनको अनन्य करके नित्य-निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त भक्तको भगवान् सुलभतासे मिल जाते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

तस्याहं सुलभः पार्थ। (गीता ८ । १४)

याद रक्खो—साधनकी रक्षा (आवश्यक प्राप्त वस्तुकी रक्षा) और साध्यकी प्राप्ति (जिसका प्राप्त करना हमारे लिये अनिवार्य है) को 'योगक्षेम' कहते हैं। इस 'योगक्षेम'का भार मनुष्य उठाना चाहता है; पर वह असफल होता है; किंतु वह यदि भगवान्‌का अनन्य चिन्तन करते हुए भगवान्‌की उपासना करे तो उसके 'योगक्षेम'का सारा भार स्वयं भगवान् वहन करते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥
(गीता ९ । २२)

याद रक्खो—पापी मनुष्यका पापसे मुक्त होकर साधु, धर्मात्मा, शाश्वत शान्तिका अधिकारी होना प्रायः असम्भव-सा है; परंतु अनन्यभाक् होकर भगवान्‌का भजन करनेपर महान् पापी भी साधु, धर्मात्मा, शाश्वत शान्तिका अधिकारी और भक्त बन जाता है और ऐसे भक्तके कभी पतन न होनेकी प्रतिश्रुति देते हुए भगवान् कहते हैं—

कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥
(गीता ९ । ३१)

याद रक्खो—भगवान् सबके हैं और उनको अपना मानकर तथा उनके अपने बनकर उनका भजन करके परम गतिको प्राप्त करनेके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री तथा पापयोनितक सभी अधिकारी हैं। इसलिये इस अनित्य और सुखरहित जगत्‌में पैदा होकर नित्य जीवन तथा अखण्ड-अनन्त-आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति चाहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको भगवान्‌का भजन ही करना चाहिये। भगवान् कहते हैं—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥
(गीता ९ । ३३)

याद रक्खो—जो भगवान्‌में चित्त और प्राण अर्पण करके परस्पर भगवच्चर्चा करते, भगवान्‌के भजनका रहस्य समझते, भगवान्‌का ही नाम-गुण-गान करते, इसीमें संतुष्ट रहते तथा इसीमें प्रीति करते हैं—ऐसे निरन्तर प्रीतिपूर्वक भगवान्‌का भजन करनेवाले पुरुषोंको स्वयं भगवान् 'बुद्धियोग' देकर अपनी प्राप्ति करवा देते हैं। भगवान् कहते हैं—

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥
(गीता १० । १०)

याद रक्खो—मृत्युरूपी संसार-सागर बड़ा दुस्तर है; पर जो लोग भगवान्‌में चित्त लगाकर भगवान्‌का ही आश्रय कर लेते हैं, उन्हें स्वयं भगवान् शीघ्र-से-शीघ्र सुखपूर्वक पार उतार देते हैं। भगवान् कहते हैं—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥
(गीता १२ । ७)

याद रक्खो—जीवनयापनमें—साधनामें बड़ी-बड़ी बाधाएँ आती हैं। उनसे पार हो जाना सहज नहीं होता, पर भगवान्‌में चित्त लगानेसे—भगवान्‌पर अनन्य निर्भरता होनेसे, भगवान्‌की कृपासे मनुष्य सारी बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयोंसे—बाधाओंसे पार उतर जाता है। भगवान् कहते हैं—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।

(गीता १८। ५८)

याद रक्खो—अनन्त जन्मोंके अनन्त सञ्चित पाप हैं, जिनसे बार-बार जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़ना होता है, कभी छुटकारा नहीं मिलता। नयी-नयी पाप-वासनाएँ, नये-नये पापकर्म और नये-नये पाप-परिणाम आते रहते हैं। मनुष्यका अपने पुरुषार्थसे—शक्ति-सामर्थ्यसे इनसे छुटकारा पाना असम्भव-सा है। परंतु यदि वह सब धर्मोंका आश्रय छोड़कर एकमात्र भगवान्‌के शरण हो जाता है तो भगवान् उसे सब पापोंसे (पापसञ्चय, पापप्रवृत्ति, पापपरिणाम—सभीसे) मुक्त कर देते हैं, उसे शोच नहीं करना पड़ता। भगवान् कहते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

'शिव'

ब्रह्मलीन परमपूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतमय उपदेश

[प्रेमपूर्ण व्यवहार, निष्काम सेवा और सत्यकी कमाई]

(एक पुराने प्रवचनके आधारपर लिखित)

सबके साथ बहुत प्रेमका व्यवहार करना चाहिये। जैसे गोपियाँ एक-दूसरीको देखकर प्रसन्न और आह्लादित होती थीं, वैसे ही साधकोंको चाहिये कि एकको देखकर दूसरा अति हर्षित हो। वे सब साथ रहनेवाली और भगवान्‌की भक्त थीं। वैसे ही उनका अनुकरण करके हमलोगोंको परस्पर प्रेम करना चाहिये। हमलोग सब साथ रहनेवाले तो हैं ही, और लोग साधक—भक्त भी कहते हैं; पर हम भक्त नहीं हैं तो क्या हुआ, हमें वास्तविक सच्ची भक्ति करनी चाहिये।

दूसरी बात यह है कि काम करते समय हर क्षण भगवान्‌को अपने पास समझते हुए यह धारणा रखनी चाहिये कि यह भगवान्‌का ही काम है। अतः भगवान्‌की आज्ञा समझकर काम करना चाहिये और इस प्रकार काम करके अत्यन्त उत्साहित होना चाहिये। जैसे लोभी मनुष्य रुपये कमाकर—धन पाकर हर्षित होता है, वैसे ही हम सेवाका काम करके हर्षित हों। सेवा ही सच्चा धन है। ऐसे धनको पाकर उत्तरोत्तर अधिक हर्ष होना चाहिये। सेवाका काम करते हुए कभी न अघाये। बड़े ही उत्साह और दिलचस्पीके साथ काम करे। जिस प्रकार कोई भगवान्‌का भक्त भगवान्‌के दर्शन, भाषण, वार्तालापसे प्रसन्न होता है, वैसे ही सेवाके कामको भगवान्‌का काम समझकर क्षण-क्षणमें प्रसन्न होना चाहिये। हर समय भगवान्‌के गुणोंको बार-बार याद करके मन्त्रमुग्धकी तरह मस्त रहना चाहिये। यह समझना चाहिये कि अपने सिरपर भगवान्‌का हाथ है, वे ही मुझसे यह काम करवा रहे हैं। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पतिकी सेवा करके परम प्रसन्न होती है, भक्त महात्माकी सेवा करके परम प्रसन्न होता है, वैसे ही हमें सेवाकार्यको भगवान्‌की सेवा समझकर क्षण-क्षणमें मुग्ध होना चाहिये। विनय क्या चीज है? अच्छा बर्ताव क्या है? यह सब आदर्श

क्रियामें लाकर दिखा देना चाहिये । हमलोगोंके व्यवहारको देखकर मनुष्यकी तो बात ही क्या, देवता भी प्रसन्न हो जायँ—ऐसा व्यवहार करना चाहिये । दूसरेका हित ही परम धर्म है—इसे लक्ष्यमें रखकर नृत्य करता हुआ काम करे । सबके साथ बड़े ही प्रेमका व्यवहार करे । सबको नारायण समझकर और नारायण हमारी प्रत्येक क्रियाको देख रहे हैं—ऐसा समझकर भगवद्‌भावसे सबकी सेवा करनी चाहिये । मनमें ऐसा उत्साह रखना चाहिये कि चाहे अपना शरीर मिट्टीमें मिल जाय और चाहे चने खाकर ही जीवन व्यतीत करना पड़े, पर बड़ी ही कुशलता और प्रसन्नताके साथ ऐसा आदर्श कार्य कर दिखाना है जिससे भगवान् तथा लोग भी प्रसन्न हो जायँ ।

संसारमें ऐसा कोई काम नहीं जिसे मनुष्य भगवत्कृपाके बलपर न कर सके । जब परमात्माकी प्राप्ति भी मनुष्य कर सकता है तो फिर और शेष रहा ही क्या ? अपने साथ कोई ईर्ष्या रखता हो तो उसे प्रसन्न करनेके लिये उसके चरणोंकी धूल बन जाना चाहिये । भगवान् अपनी सेवासे इतने प्रसन्न नहीं होते, जितने अपने प्रति दुर्व्यवहार करनेवालेके साथ अच्छा व्यवहार करनेसे होते हैं । जो मान-बड़ाईके लायक नहीं हैं, उन्हें भी मान-बड़ाई देकर आनन्द लूटना चाहिये । संसारमें वही पुरुष धन्य है, जिसके गुणोंकी प्रशंसा शत्रु भी करे ।

सेवा-कार्य करते हुए भगवान्‌की प्राप्तिमें क्या-क्या बाधक हैं—यह ख्याल रक्खे । एक तो अकर्मण्यता (कामसे जी चुराना) बाधक है । पाँच मिनट भी निकम्मा न रहे । यन्त्रके समान इस शरीरसे काम लेता ही रहे । आखिर, इस शरीरकी तो राख होनी है; इसलिये जबतक राख न हो तबतक इससे काम ले लेना चाहिये, जिससे पीछे पश्चात्ताप न करना पड़े । जन्म-जन्मान्तर बीत गये, हमें भगवान् नहीं मिले—इसका प्रधान कारण यही है कि हममें तत्परता नहीं है । इसलिये इस दोषको तो निकाल ही डालना चाहिये । इसके सिवा आलस्य, प्रमाद, मान-बड़ाईकी इच्छा या किसी प्रकारका भी स्वार्थ हमारे लिये बहुत घातक है । इन सबकी जड़ है—अहंकार । अहंकारके नाशसे सबका नाश हो जाता है । इसलिये अहंकारका नाश हो गया तो मनुष्य पास हो गया । हर एक भाईको ध्यान रखना चाहिये कि अपने काम-काजमें, व्यवहारमें झूठ-कपट आवे तो एक-दूसरेको बड़े प्रेमसे सावधान करे । कभी स्वप्नमें भी झूठ-कपट करनेकी इच्छा न करे । स्वार्थको बिल्कुल हटा दे । स्वार्थका त्याग करके निष्काम भावसे जो क्रिया होती है, वही सबको मोहित (प्रसन्न) करनेवाली है । कोई भी कार्य हो, उसमें झूठ-कपट तो करे ही नहीं । दूसरा करता हो तो उसे खूब प्रेमसे समझाये । बड़े हों तो उनसे सेवककी तरह प्रार्थना करे । छोटे हों तो मित्र समझकर समझाये । सबसे बड़े विनय तथा प्रेमसे मिले, मानो भगवान् ही मिल गये । इस प्रकार करनेसे फिर भगवान्‌के मिलनेमें विलम्ब नहीं हो सकता । जिस कार्यके करनेमें जितना अधिक परिश्रम हो, उसमें उतनी ही अधिक कमाई समझे ।

सब काम भगवान्‌को साथ समझकर मन्त्रमुग्धकी भाँति करे । उस समय अश्रुपात और रोमाञ्च होता रहे । इस प्रकार समझता रहे कि जैसे बालकको गुरु हाथ पकड़कर सिखाते हैं वैसे ही मानो भगवान् मेरा हाथ पकड़कर मुझे बड़े प्रेमसे सिखा रहे हैं ।

काम करते समय हर समय प्रसन्न रहना चाहिये । जो व्यापारी ग्राहकको शुद्ध विश्वासी घी आदि वस्तुएँ देता है, उससे ग्राहक बड़े प्रसन्न होते हैं; क्योंकि हर एक मनुष्यको इतना विश्वासी घी आदि पदार्थ मिलता नहीं । और जिनसे वह दूध, क्रीम आदि

कच्चा माल खरीदता है, उनको भी उसके सद्भावसे प्रसन्नता होती है। इस तरह दूना लाभ है तथा इसमें धर्मकी रक्षा होती है। पैसेके लोभी मनुष्य धर्म-भ्रष्ट करनेको भी तैयार हो गये हैं, इसलिये शुद्ध पदार्थका व्यापार करनेमें धर्मकी रक्षा और सबकी सेवा होती है एवं इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। उद्देश्य अच्छा होना चाहिये। रुपये कमानेका उद्देश्य न होकर निःस्वार्थभावसे दूसरोंको लाभ पहुँचानेका उद्देश्य होना चाहिये। व्यापारमें अधिक मुनाफा हो जाय तो जिन लोगोंसे दूध, क्रीम आदि कच्चा माल लिया जाय, उन्हें ही दूध आदिका अधिक दाम देकर या वस्त्रादि देकर किसी-न-किसी रूपमें सहायता पहुँचा दें, तब तो बहुत ही उत्तम है। जो लोग गरीब हैं उनको हर प्रकारसे सुख पहुँचावे। गरीब होनेके कारण जो वस्त्र नहीं खरीद सकते, उनको शीतकालमें वस्त्र देकर उनकी सेवा करे।

निःस्वार्थभावसे क्रय-विक्रय करते हुए भी भगवान्की प्राप्ति हो सकती है। भगवान् कहते हैं—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥
(गीता १८। ४६)

'जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त हो जाता है।'

अतः कामको खूब तत्परताके साथ हँसते-हँसते करे। काम करते समय अपनेमें जो त्रुटि या दोष आये, उसे निकालता रहे। किसीसे बात करनेका काम पड़े तब उसे भगवान् समझकर बहुत प्रेमसे बात करे। काम करते हुए खूब प्रसन्नचित्त रहे। पूरी प्रसन्नता हो तब तो काम ही बन जाय। भगवान्ने कहा है—

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥
(गीता २। ६५)

'अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है।'

जिनके व्यवहारमें लोभ अधिक है, उनको विचार करना चाहिये कि पैसे बढ़ने होंगे तो बढ़ेंगे ही। सभी लोग दुःखका विरोध करते हैं, पर प्रतिकार करते-करते भी दुःख प्राप्त होता ही है। इसी प्रकार चाहे कितना ही विरोध करें, मुनाफा जो होना होगा वह तो होगा ही। यह युक्तिसंगत और प्रत्यक्ष बात है। यह बात समझमें आ जाय तो भाव ही बदल जाय और व्यवहार सुधर जाय। इसलिये ऊँचे-से-ऊँचा व्यवहार करे। लोगोंको दिखला दे कि यह व्यवहार ऊँचे-से-ऊँचा है। कर्मयोगसे मन-बुद्धिका सुधार होता है। भगवान्ने बतलाया है—

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये॥
(गीता ५। ११)

'कर्मयोगी ममत्वबुद्धिरहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीरद्वारा भी आसक्तिको त्यागकर अन्तः-करणकी शुद्धिके लिये कर्म करते हैं।'

जब व्यापारी आये, तब उसके साथ कैसा व्यवहार करें? जैसे कोई अपना अत्यन्त निकटका सम्बन्धी हो और वह गरीब हो तो उसे व्यापार करवाकर लाभ पहुँचाना चाहते हैं। इसी प्रकार व्यापारीके साथ त्याग और उदारताका व्यवहार करें। वह त्याग मुक्ति देनेवाला बन सकता है। पैसा तो भाग्यमें होगा तो आयेगा ही। ऊँचे दर्जेका व्यवहार करे।

यदि सत्य बोलनेसे एक पाई भी पैदा न हो और असत्य बोलनेसे हजार रुपया प्राप्त होता हो

तब भी सत्य ही बोलना चाहिये। चाहे एक पाई भी न आये, सबके साथ खूब प्रेमपूर्ण व्यवहार करनेका अपना उद्देश्य रक्खे। फिर उस काममें जो कुछ बचत रहे, वह अमृत है। वह धन बर्बाद नहीं होता। न्यायसे उपार्जन किये हुए द्रव्यसे अन्तःकरण शुद्ध होता है। अतः सत्यकी कमाई करके दिखावे।

जीवनका अन्तिम पुरुषार्थ

[एक महात्माका प्रसाद]

(प्रेषक—श्री'माधव')

वर्तमान जीवन बड़े महत्त्वका है। इस जीवनमें ही प्राणी उत्कृष्ट भोगोंके लिये, नित्य जीवनके लिये और प्रेम-प्राप्तिके लिये साधन कर सकता है। सर्वहितकारी प्रवृत्ति, तप एवं पुण्यकर्म आदिसे उत्कृष्ट भोग, विवेकसे नित्य जीवन और समर्पणसे प्रेमकी प्राप्ति हो सकती है। इतना ही नहीं, हम अपनेको इतना सुन्दर बना सकते हैं कि हमारी आवश्यकता सभीको हो और हमें किसीकी आवश्यकता न हो।

प्राकृतिक विधानका आदर करनेपर उदारता प्राप्त होती है। जिस प्रकार पृथ्वीपर सभी पौधे उगते तथा आश्रय पाते हैं, जल सभीकी प्यास बुझाता है, सूर्य सभीको प्रकाश देता है, वायु सभीको साँस लेने देती है और आकाशसे सभीको अवकाश मिलता है, उसी प्रकार उदारस्वभावसे सभीको स्नेह तथा सहयोग मिलता है।

स्नेहकी माँग प्राणिमात्रको रहती है; क्योंकि स्नेहके बिना जीवनमें व्यापकता नहीं आती। सच तो यह है कि हमारा निर्माण भी किसीके स्नेह और उदारतासे ही हुआ है। अतः स्नेह एवं उदारतासे हमारी जातीय एकता है—वह हमारा 'स्व'भाव है। हम उससे विमुख हो गये हैं, दूर नहीं। विवेकपूर्वक हम अनित्य जीवनसे विमुख होकर नित्य जीवन प्राप्त कर सकते हैं। प्रेमी होकर प्रेमास्पदको रस प्रदान कर सकते हैं। भोगप्राप्ति विवेकयुक्त जीवनका उद्देश्य नहीं है। विवेकयुक्त जीवनका उद्देश्य तो केवल कामनाओंकी निवृत्ति, जिज्ञासाकी पूर्ति और प्रेमकी प्राप्ति हो सकता है। कामनाओंकी निवृत्तिमें नित्य योग और चिर शान्ति तथा जिज्ञासाकी पूर्त्तिमें अमरत्वकी प्राप्ति होती है। अस्तु, जिसे भोग अभीष्ट नहीं है, उसे ही नित्य योग और अमरत्व प्राप्त होता है। जो अमरत्वकी लालसा नहीं रखता, उसे प्रेमकी प्राप्ति होती है।

प्रेमप्राप्तिके लिये तो हमें उन अनन्तके समर्पित होना पड़ेगा। उसके लिये हमें उनकी दी हुई सामर्थ्य, योग्यता आदिको केवल उन्हें ही समर्पित करना होगा। जिस प्रकार शिशु माँकी उपार्जित वस्तुओंको माँसे उत्पन्न किये हुए हाथोंके द्वारा ही जब माँके भेंट कर देता है, तब माँ प्रसन्न हो जाती है। बेचारे बालकके पास अपनी कोई वस्तु ही नहीं है, सब कुछ माँसे ही मिला है। उसी प्रकार हमें भी सब कुछ उन अनन्तकी अहैतुकी कृपासे ही मिला है। अतः हमें उनकी दी हुई प्रत्येक वस्तु, योग्यता और सामर्थ्यको उन्हींसे प्राप्त विवेकपूर्वक उन्हींको भेंट कर देना है। तथा उनके विश्वास, प्रेम और सम्बन्धको अपना अस्तित्व मानना है। ऐसा होते ही हमें जो प्रेम प्राप्त होता है, उसी प्राप्त प्रेमसे हम उन अनन्तको रस प्रदान कर सकते हैं। जिस प्रकार माँके द्वारा प्राप्त स्नेहसे ही शिशु माँको रस प्रदान करता है, उसी प्रकार हम

शिशुकी भाँति उन अनन्तके दिये हुए प्रेमसे ही उन्हें आह्लादित कर सकते हैं। इस दृष्टिसे जीवनका मुख्य उद्देश्य प्रेम-प्राप्ति है। वह प्रेम तभी प्राप्त होगा, जब हम उनकी कृपाका आश्रय लेकर अपनेको उन्हींके समर्पित कर दें। इस बातके लिये चिन्तित न हों कि हम कैसे हैं? जैसे भी हैं उनके हैं। वे जैसे भी हैं अपने हैं। उनकी कृपा स्वयं हमें उनसे प्रेम करनेके योग्य बना लेगी। हमें तो केवल उनकी कृपाको अपना लेना है। उनकी कृपाशक्ति स्वयं उस शक्तिमान्‌को मोहित कर देती है। अतः उनकी कृपाका आश्रय लेकर जो एक बार यह कह देता है कि मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरे हो, बस वे सदाके लिये उसके हो जाते हैं। यही इस जीवनका अन्तिम पुरुषार्थ है।

ॐ आनन्द आनन्द आनन्द!

भक्तिसाधनाका मनोविज्ञान

(मूल लेखक—श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती)

[अनुवादक—अनन्तश्री स्वामीजी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज]

[गताङ्क पृष्ठ १०५८से आगे]

अष्टम अमृतवृष्टि

यह पहले ही कह चुके हैं कि भक्तिकल्पवल्लीके साधना नामकी दो पत्तियाँ होती हैं। अब उनसे भी अतिशय चिकने किसलय श्रवण-कीर्तन आदि रूपका वर्णन करते हैं। इनमें भावकुसुम संलग्न होते हैं और इनका नाम अनुभाव होता है। ये एकाएक प्रकट होकर क्षण-क्षणमें प्रकाशित करते हैं और भावकुसुमको परिणत करके उसी समय प्रेमफल बना देते हैं।

इस भक्तिवल्लीकी एक-एक चर्या आश्चर्यमयी है; क्योंकि इसके पत्र, स्तवक, पुष्प, फल परिपक्व हो जानेपर भी अपने स्वरूपका परित्याग नहीं करते और सब-के-सब एक साथ ही नित्यनूतन रूपसे शोभायमान होते हैं। इसके बाद तो भक्तका वही मन जो पहले शरीर, सम्बन्धी जन, गृह, धन आदिमें शत-शत सहस्र-सहस्र रूप धारण करके प्रवृत्त था और ममताकी हथकड़ी-बेड़ियोंसे आबद्ध था, उसी मन और उसकी सारी वृत्तियोंको खेल-खेलमें ही सब जगहसे छुड़ाकर यह प्रेम एक विचित्र कार्य कर देता है। जैसे महारसके कूपका स्पर्श करने मात्रसे ही वस्तुओंका रूपान्तर हो जाता है, इसी प्रकार इस प्रेमरसके स्पर्शमात्रसे ही वे मायिक वृत्तियाँ भी साकार चिदानन्द ज्योतिर्मय हो जाती हैं और यह प्रेम उन सबको भगवान्‌के रूप, नाम, गुण एवं माधुरीमें निबद्ध कर देता है। रश्मिमाली भुवन-भास्कर सूर्यके समान यह प्रेम अपने उदय होनेके पूर्व क्षणमें ही सभी पुरुषार्थरूप नक्षत्रमण्डलीको विलुप्त कर देता है। इस प्रेमका स्वाद जब मिलने लगता है, तब वह इतना गाढ़ा होता है और साथ-ही-साथ शक्तिशाली भी कि वह श्रीकृष्णको भी अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इस प्रेमरसकी पौष्टिकी शक्तिका नाम 'श्रीकृष्णाकर्षिणी' है। प्रेमी भक्त इस आस्वादनके प्रारम्भ होनेपर विघ्नोंको कुछ नहीं गिनता, यह तो एक छोटी बात है; प्रत्युत वह अपने-आपको भी भूल जाता है। उसकी स्थिति महाशूर-भटके समान अथवा महाधन-लोभी, अत्यावेशलुब्ध चोरके समान हो जाती है। यदि संसारमें कोई ऐसी क्षुधा हो जो अहर्निश, प्रतिक्षण चतुर्विध, परम स्वादु, अपरिमित अन्नका भोजन करनेपर भी शान्त न हो तो, कहा जा सकता है कि वैसी ही उत्कण्ठा भक्तके हृदयमें होती है। प्रेम ऐसी ही उत्कण्ठासे प्रेमीके मनको तप्त करके उसी समय भगवान्‌के रूप, गुण, अपार माधुर्यको प्रकट कर देता है और उनको आस्वादनका विषय बनकर कोटि-चन्द्रके समान शीतलता एवं आह्लादसे भर देता है। अद्भुत है यह प्रेम, जो अपने आधारभूत भक्तके हृदयमें एक साथ ही उत्कण्ठा और माधुर्य दोनोंका अनुभव कराता है।

जब यह प्रेम उदित होकर थोड़ा-सा बढ़ता है, तब भक्त प्रतिक्षण भगवत्साक्षात्कारके लिये ही व्याकुल रहने लगता है। उत्कण्ठा-शल्यकी जलन अत्यन्त प्रबल हो जाती है। स्फूर्ति-

प्राप्त रूप लीला एवं माधुर्यसे तृप्ति नहीं होती। उसके मनकी ऐसी दशा हो जाती है कि बन्धु-बान्धव भी अन्धकूप-जैसे लगने लगते हैं। भवन कण्टकवनके समान और आहारका आग्रह महाप्रहार जान पड़ता है। सज्जनोंके द्वारा की हुई प्रशंसा उसे सर्पदंशके समान विषैली जान पड़ती है। नित्य कर्तव्य भी मर्तव्य, अंग-प्रत्यंग भी भंगकारी भार, सुहृद्गणोंकी सान्त्वना विषदृष्टि और सदा जागर भी अनुतापका सागर प्रतीत होता है। कभी-कभी आनेवाली निद्रा जीवन-विद्राविणी और अपना विग्रह भी मूर्तिमान् भगवन्निग्रह ज्ञात होते हैं। प्राण धानकी तरह पुनः भुने हुए और अपनी पहलेकी प्रिय वस्तुएँ उपद्रवकारिणी जान पड़ती हैं। कहाँतक कहें, उस समय भगवच्चिन्तन भी भक्तके लिये आत्मनिकृन्तन हो जाता है। इसके बाद प्रेम ही चुम्बक-सा बनकर कृष्ण-लोहको खींचकर ले आता है और किसी भी क्षणमें भक्तके लोचनगोचर कर देता है। भगवान् प्रत्यक्ष होकर अपने स्वरूपभूत परम-कल्याणगुण सौन्दर्य, सौरम्य, सौस्वर्य, सौकुमार्य, सौरस्य, औदार्य एवं कारुण्य आदि उस भक्तके नेत्र आदि इन्द्रियोंमें भर देते हैं। उन गुणोंकी परम मधुरता एवं नित्य-नूतनताका आस्वादन करनेवाले भक्तके हृदयमें जब वे प्रेमके कारण प्रतिक्षण बढ़ने लगते हैं और उनके अनुरूप ही उत्कण्ठा भी बढ़ने लगती है, तब आनन्दका एक ऐसा अपार पारावार प्रकट हो जाता है कि कवि-वाणीकी छोटी-सी लकड़ी उसकी थाह लगानेमें सर्वथा असमर्थ हो जाती है।

उस समय भक्तको जैसा आनन्द होता है, उसका उपमान सृष्टिमें कहीं भी नहीं है; तथापि दिग्दर्शनके लिये इस ढंगसे कहा जा सकता है कि मानो ग्रीष्म-ऋतुके प्रखर तापसे संतप्त मरुभूमिके पथिकको एक विशाल घनी छायावाले वटवृक्षका आश्रय मिल गया हो अथवा उत्तरकाशीतल-वाहिनी, शीतलवाहिनी भगवती भागीरथीके सहस्र-सहस्र वटसम्भृत हिमसलिलकी धारा प्राप्त हो गयी हो। ऐसा भी कह सकते हैं कि मानो दीर्घकालसे दावाग्नि-पीड़ित गजेन्द्रको अपार कादम्बिनी-घटासार जलधाराका अभिषेक प्राप्त हो। यह कहना भी अल्प ही है कि अनन्त आमयशाली, तल्पशायी, स्वादलोलुप रोगीको परम आह्लाददायी सुधामय प्रचुर भोजनका रसास्वाद प्राप्त हो गया हो। कुछ-कुछ इन्हीं भावोंको भक्तकी मनःस्थितिका उपमान बनाया जा सकता है।

सबसे पहले भगवान् अपार चमत्कार-महोदधिमग्न भक्तके लोचनका अतिथि बनाते हैं अपने सौन्दर्यको। परम प्रियतम प्रभुकी इस रूप-माधुरीके प्रभावसे सब इन्द्रियाँ और शरीरमें मनोवृत्तियाँ लोचनरूपमें परिवर्तित होने लगती हैं। भक्तके कभी जडता आती है, कभी वह काँपता है, कभी नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगती है। वह आनन्दके उद्रेकसे मूर्च्छाग्रस्त होनेहीवाला होता है कि भगवान् अपना दूसरा गुण सौरम्य, दिव्य सुगन्ध उसकी घ्राणेन्द्रियके प्रति प्रकाशित कर देते हैं। इन्द्रिय और मन घ्राणेन्द्रियमें समाने लगते हैं। मूर्च्छा होते-न-होते भगवान् कहते हैं—'मेरे प्यारे भक्त! मैं तेरा ही हूँ। विह्वल मत बन! मेरा अनुभव कर।' इस प्रकार भगवान्‌की सुरीली वाणी, सौस्वर्य भक्तके कानोंमें अमृत उड़ेल देता है। इन्द्रिय और मन कान होनेके लिये दौड़ पड़ते हैं। मूर्च्छाके प्रारम्भमें ही भगवान् अपने चरणारविन्दसे, कर-कमलोंसे अथवा वक्षःस्थलसे अपना सुखद स्पर्श देकर भक्तको अपने सौकुमार्यका अनुभव कराते हैं।

दास्य-भाव हो, तो भगवान् चरणारविन्दसे सिरपर स्पर्श करते हैं। सख्य-भाव हो तो हाथोंसे हाथ मिलाते हैं। वात्सल्यभाव हो तो अपने कर-कमलोंसे आँसू पोंछते हैं। प्रेयसी-भाव हो तो अपने भुजपाशसे बाँधकर वक्षःस्थलसे वक्षःस्थलका आलिंगन करते हैं। यह विशेष समझने योग्य है।

इन आश्लेषसे भी मूर्च्छाका आगमन होनेपर भगवान् अपने अधरामृतका सौरस्य भक्तकी रसनाका विषय बनाते हैं, परंतु यह सौभाग्य प्रेयसीभाववाले भक्तको और ठीक उसी समय उदय होनेवाले अभिलाषकी पूर्तिके लिये ही करते हैं। इससे भक्तके हृदयमें जितना-जितना आनन्दका उदय होता है उतनी ही उतनी मूर्च्छा भी निविड होती जाती है। भगवान् मानो ऐसे भक्तको प्रबुद्ध करनेमें असमर्थ-से होकर अपने असीम औदार्यको प्रकट करते हैं और अपने सौन्दर्य, माधुर्य आदि सभी गुणोंको एक साथ ही भक्तकी सब इन्द्रियोंमें प्रकट कर देते हैं और बलात् उसका आस्वादन कराते हैं। उस समय मानो भगवान्‌के संकेतको जानकर प्रेम भी अत्यन्त बढ़ जाता है और तदनुरूप तृष्णाको भी समृद्ध करता है। प्रेम स्वयं चन्द्रमाके रूपमें प्रकट होकर उसके हृदय-समुद्रको शत-शत परमानन्द-तरंगोंसे उद्वेलित कर देता है और स्वयं ही भक्तके मनका अधिदेवता बनकर युगपत् भगवद्गुणोंके आस्वादनका सामर्थ्य दे देता है। यह

निर्विवाद अर्थात् अनुभवसिद्ध है कि भक्तको इन सब स्वादोंकी अनुभूति एक साथ ही होती है।

ऐसा नहीं समझना चाहिये कि ऐसी स्थितिमें तो मन एकाग्र नहीं रहेगा और चञ्चल मनमें स्वादकी सान्द्रता, अर्थात् घनता भङ्ग हो जायगी; क्योंकि सम्पूर्ण इन्द्रियों और मनोवृत्तियोंका सौन्दर्य, सौस्वर्य आदिका आस्वादन करनेके लिये युगपत् ही नमन, श्रवण आदिके रूपमें रूपान्तर हो जाता है। ये अद्भुत, अलौकिक, अचिन्त्य चमत्कार रसानुभूतिको अत्यन्त गाढ़ बना देते हैं। लौकिक अनुभवमूलक तर्कदावाग्निसे इस अलौकिक चमत्कारको काटना उचित नहीं है। अचिन्त्यभाव तर्ककी कसौटीपर नहीं कसे जाते।

यद्यपि भक्तके हृदयमें भगवान्‌के सौन्दर्य, सौरस्य, सौरभ्य, सौस्वर्य आदिके सभी माधुर्योंके अनुभवकी उत्कट उत्कण्ठा निरन्तर बढ़ती रहती है, तथापि जैसे चातकके चञ्चुपुटमें सभी जलविन्दु नहीं अँटते, वैसे ही उसके हृदयमें सबका संनिवेश नहीं हो पाता।

अब भगवान् विचार करते हैं 'अहो! तब मैंने इतने सौन्दर्य-माधुर्यादि क्यों धारण कर रक्खे हैं, जब कि ये मेरे भक्तके काम नहीं आते हैं।' इसी समय भगवान्‌की कृपाशक्ति अपना विलास प्रकट करती है।

भगवान्‌की यह कृपाशक्ति ही उनकी सम्पूर्ण शक्तियोंकी स्वामिनी है। आगम ग्रन्थोंमें इसका इस प्रकार वर्णन है कि आठ दिशाओंमें वर्तमान विमला, उत्कर्षिणी आदि आठ शक्तियोंके मध्यमें कमल-कर्णिकापर चक्रवर्तिनी महारानीके समान यही शक्ति विराजमान है। इसीका दूसरा नाम 'अनुग्रह' है। यह शक्ति भगवान्‌के नयनारविन्दमें ही अपने आपको व्यञ्जित करती रहती है। यही शक्ति कभी 'वात्सल्य', कभी 'करुणा', कभी 'चित्तद्रव' आदि अनेक नाम धारण करके प्रकट होती है। इसी कृपाशक्तिकी प्रेरणासे भगवान्‌की सर्वव्यापिनी इच्छाशक्ति भी भक्तोंके हृदयमें अनुरागके रंगकी पिचकारी मारती है और आत्माराम परमहंसोंको भी अत्यन्त आश्चर्यमयी भूमिकामें आरूढ कर देती है। इसी कृपाशक्तिसे भगवान्‌का 'भक्त-वात्सल्य' नामक एक गुण गुणसम्राट्‌की पदवीपर प्रतिष्ठित है और भागवतके प्रथम स्कन्धमें पृथ्वीके द्वारा वर्णित उनके सत्य, पवित्रता आदि सभी स्वरूपभूत अचिन्त्य कल्याणमय गुणगणोंका शासन करता है।

यद्यपि भगवान्‌के दिव्य वपुमें मोह, तन्द्रा, भ्रम, रूक्षता, उग्र काम, चाञ्चल्य, मद, मत्सर, हिंसा, खेद, परिश्रम, असत्य, क्रोध, आकांक्षा, आशंका, विश्वविभ्रम, विषमता और परापेक्षा—ये अठारह दोष सर्वथा नहीं होते, तथापि भगवान्‌की कृपाशक्तिके अनुरोधसे राम-कृष्ण आदि अवतार-शरीरोंमें ये कभी-कभी देखे जाते हैं और भक्तोंके लिये महान् गुणका रूप धारण कर लेते हैं।

यही कृपाशक्ति जब अपना विलास प्रकट करती है, तब भक्तके हृदयमें भगवान्‌के सौन्दर्य, माधुर्य आदिके आस्वादनका सामर्थ्य उदय हो जाता है और वह बार-बार उसका आस्वादन करके चूडान्त आश्चर्यचर्या प्रकट करता है। मनमें इस अदृष्ट और अश्रुत वात्सल्यकी अनुभूतिसे वह सोचने लगता है—'अहो! यही तो वात्सल्य है, यही तो स्नेह है।' उसका हृदय द्रवित हो जाता है। भगवान् कहते हैं—'मेरे प्यारे भक्त! तुमने अनेक जन्मोंतक मेरे लिये पुत्र-कलत्र, धन-भवन सब छोड़कर मेरी सेवा करनेकी अभिलाषासे सर्दी-गरमी, भूख-प्यास, व्यथा और क्लेश सहन किये हैं, अपमानपर दृष्टि नहीं डाली है, भिक्षा माँगकर खाया है। मैं तुम्हें कुछ नहीं दे सका, केवल ऋणी रहा। सार्वभौम ब्रह्मपद, योगसिद्धि यह सब तुम्हारे योग्य नहीं है, यह भला मैं तुम्हें कैसे दूँ? जो घास-भूसी या भूसा पशुओंको स्वादु लगता है, वह मनुष्यको देने योग्य नहीं होता। यद्यपि मैं अजित हूँ, परंतु तुमने मुझे जीत लिया। तुम्हारी सुशीलता-लताके अतिरिक्त मेरे लिये दूसरा कोई भी अवलम्बन नहीं है। भगवान्‌की यह अत्यन्त स्निग्ध वर्णन-वाङ्माधुरी कर्णावतंस होते ही भक्तका हृदय द्रवित हो जाता है। वह कहने लगता है—'प्रभो!! प्रभो!! भगवन्!! कृपाके अपार पारावार! मैं तो संसारके घोर प्रवाहमें क्लेशचक्र चक्रव्यूहके कराल गालमें पड़कर चूर-चूर हो रहा था, चबाया जा रहा था। मेरी दुर्दशा देखकर करुणासे आपका चित्त-नवनीत द्रवित हो गया और आप लोकातीत होनेपर भी अविद्याविदारी गुरुरूपधारी होकर मेरे सम्मुख प्रकट हुए। स्वदर्शनके सुदर्शनसे अज्ञानतमका विदलन किया, उस मगरके मुखसे निकाला। अपने चरण-कमल-युगलका दास बनानेके लिये मेरी कर्णवीथीमें मन्त्र-वर्णको प्रविष्ट किया—मेरी व्यथा मिटायी, अपने गुणानुवाद नाम-कीर्तन, श्रवण-स्मरण आदिके द्वारा मुझे शुद्ध किया, अपने भक्तोंकी संगति

दी, अपनी सेवाकी रीति समझायी; फिर भी अपनी दुर्बुद्धिके कारण मुझ अधमने एक दिन भी प्रभुकी ठीक-ठीक सेवा नहीं की। यह कदर्यचर्य अधमाधम जन दमनके योग्य था; परंतु आपने अपनी दर्शनमाधुरीसे इसे तृप्त कर दिया। प्रभु! आप कहते हैं कि 'मैं तुम्हारा ऋणी हूँ'—यह श्रीमुख-वाणी अपने लिये उपहास जान पड़ती है। मैं क्या करूँ? यदि मेरे करोड़ों अपराध हों तो उन्हें क्षमा करानेकी धृष्टता अब मुझमें आ रही है। मेरे परार्द्धाधिक अपराध बड़े प्रबल और पुराने हैं। कुछके फल भोगे हैं और कुछके भोगने हैं, परंतु वे रहें उनकी बात अलग है। अभी कलकी हो बात है, मैंने आपके अङ्गको जलवर्षी मेघसे, नीलकमलसे और नीलमणिसे उपमा देकर वर्णन किया है। चन्द्रमासे श्रीमुखकी एवं नवपल्लवसे श्रीचरणकी उपमा देकर मैंने जली हुई आधी सरसोंसे मानो स्वर्णपर्वत सुमेरुकी तुलना की हो। चणक-कणिकाको चिन्तामणिके समान बताया हो, श्रृगालकी सिंहसे, मच्छरकी गरुडसे बराबरी की हो। मुझ दुर्बुद्धिने अपराध किया है—स्पष्ट ही जान पड़ता है और साथ-ही-साथ मैंने यह अभिमान भी किया कि मैं प्रभुकी स्तुति कर रहा हूँ। मैंने अपनी अविज्ञताको कविता कहकर लोगोंमें प्रख्यात किया। अब तो जो मैंने क्षणभर श्रीमूर्ति-माधुरीका वैभव-दर्शन किया है, उससे मेरी वाणी अत्यन्त प्रतिहत हो गयी है और अब वह आपके अलौकिक सौन्दर्य-रसमाधुरीको दूषित करनेका प्रयत्न कभी भी नहीं करेगी!' इस प्रकार जब भक्त प्रार्थना करता है तब भगवान् उसके ऊपर और भी प्रसन्न हो जाते हैं और उसकी प्रेयसी आदि भावना और अभीप्साके अनुसार उसके सम्मुख स्वविलास-विलसित श्रीवृन्दावन प्रकट कर देते हैं। कल्पवृक्ष, महायोगपीठ, प्रेयसीवृन्द-शिरोमणि श्रीवृषभानुनन्दिनी, श्रीललिता आदि सखी, उनकी किङ्करी, सुबल आदि सखा, गौएँ, श्रीयमुना, श्रीगोवर्द्धन, भाण्डीर, नन्दीश्वरगिरि, माता-पिता, भाई-बन्धु, सेवक कहाँतक कहें सभी व्रजवासियोंको भगवान् प्रकट कर देते हैं और इस प्रकार रसोत्कर्षका उदाहरण दिखाकर आनन्द-महामोहकी तरङ्गिणीमें भक्तको निमग्न कर देते हैं और फिर अपने परिकरके साथ अन्तर्धान हो जाते हैं।

कुछ ही क्षणोंमें भक्तकी चेतना लौट आती है और वह पुनः प्रभुका दर्शन करनेके लिये नेत्रोन्मेष करता है, प्रभुको सम्मुख न देखकर आँसुओंसे नहा जाता है, और सोचने लगता है कि 'क्या यह मैंने स्वप्न देखा है?' नहीं-नहीं, शय्या-आलस्य, नेत्र-कालुष्य आदि तो यहाँ हैं ही नहीं, तब क्या यह किसीकी मायाका विलास है? कभी नहीं। ऐसा आनन्द मायिक नहीं हो सकता। क्या यह मेरे चित्तकी ही कोई भ्रममयी वृत्ति थी? सर्वथा नहीं; क्योंकि लय-विक्षेप आदि दोषोंकी तो गन्ध भी नहीं है। तब क्या मेरे मनोरथके परिपाकसे ही यह वस्तु मिली है? कभी नहीं; क्योंकि मनोरथने कभी ऐसे पदार्थकी सीमा भी नहीं देखी है। तब क्या स्फूर्तिलब्ध भगवत्साक्षात्कार है, ऐसा भी नहीं; क्योंकि पहलेकी जितनी स्फूर्तियोंका स्मरण होता है, उनसे यह अति विलक्षण है।' इस प्रकार विविध संशय उसके मनमें आते हैं। वह धूलसे भरी धरतीमें लेटे-लेटे ही कहने लगता है—'चाहे जो कुछ भी हो मुझे तो वही दर्शन चाहिये। फिर वैसा दर्शन न मिलनेपर बारंबार अभिलाषा टूटनेपर वह अत्यन्त खिन्न होकर धरतीपर लुढ़कने लगता है और रोता है तथा अपने अङ्गोंको घायल कर लेता है। कभी मूर्छित हो जाता है। कभी जगकर खड़ा होता है, बैठता है, भागता है, चिल्लाता है पागलोंकी तरह कभी, कभी विद्वानोंकी तरह बैठ जाता है। कभी नित्य-कर्म करता है, कभी भ्रष्टाचारके समान रहता है, असम्बद्ध प्रलाप करता है। भूताविष्टके समान रहता है। जब कभी कोई समझाने-बुझानेवाला भक्त आकर एकान्तमें प्रश्न करता है, तब वह अपनी अनुभूति सुनाता है और क्षणभरके लिये स्वस्थ हो जाता है। जब वह भक्त कहता है—'मित्र! तुम बड़े भाग्यशाली हो। तुम्हें भगवान्‌का साक्षात्कार ही हुआ है' और युक्तिसे उसे संतुष्ट कर देता है। तब वह आनन्दित होता है, कहता है—'हाय-हाय! तो फिर-फिर ऐसा दर्शन क्यों नहीं होता है? क्या यह किसी महापुरुषकी कृपा है या किसी भगवत्परिचर्याका, जो घुणाक्षरन्यायसे सम्पन्न हो गयी हो, फल है, मैं तो बहुत ही अभागा हूँ—क्षुद्र हूँ। सचमुच बिना किसी कारणके ही मेरे ऊपर भगवान्‌की कृपा प्रकट हुई है, न जाने मेरे किस अनिर्वचनीय सौभाग्यसे यह निधि मेरी मुट्ठीमें आ गयी और पता नहीं किस महापराधसे गिर गयी, मैं निश्चेतन यह निश्चय करनेमें असमर्थ हूँ। यही बाधा मेरी बुद्धिको निरन्तर बाधित कर रही है।

कहाँ जाऊँ, क्या, क्या करूँ ! किससे कौन-सा उपाय पूछूँ ! मैं मानो महाशून्य-निरात्मक-निःशरण और दावाग्नि-दग्ध हो गया हूँ। यह त्रिलोकी मुझे निगलती जा रही है—ऐसा जान पड़ता है। अच्छा; तो लोगोंसे पृथक् होकर थोड़ी देरतक एकान्तमें प्रणिधान करता हूँ।'

वह भक्त बैठकर कहने लगता है—'हा प्रभो ! हा सुन्दर-मुखारविन्द ! यह समग्र विपिनराज वृन्दावन आपके श्रीविग्रहवरकी माधुरीके सुधा-धारासे भावित और वासित हो गया है। चारों ओर वन-मालाका परिमल व्याप्त हो गया है। अलिकुल चटुलित होकर चारों ओर गुञ्जार कर रहे हैं। एक बार तो मैंने उसका आस्वादन कर ही लिया है। अहो ! आपसे अभ्यर्थना करके मैं पुनः-पुनः क्यों कष्ट लूँ !' इस प्रकार विलाप करके भक्त लोट-पोट हो जाता है। लंबी श्वास चलने लगती है। मूर्च्छित हो जाता है—उन्मत्त हो जाता है—सब ओर भगवान्‌का ही दर्शन करके आनन्दित होता है। आलिंगन करता है—हँसता है, इधर-उधर भटकता है, गाता है—दर्शन न मिलनेपर पछताता है—गाता है—रोता है। उसकी चेष्टाएँ अलौकिक हो जाती हैं। इसी प्रकार उसकी आयु पूरी होती है। अपना देह भी है या नहीं, इसका उसे अनुसंधान नहीं रहता। समयपर देह पञ्चत्वको प्राप्त होता है, परंतु उसे पता नहीं चलता। वह तो यही समझता है कि मेरी प्रार्थना सुनकर करुणावरुणालय भगवान् साक्षात् होकर मुझे अपनी सेवामें नियुक्त कर रहे हैं और अपने महलमें ले जा रहे हैं, वह कृतकृत्य हो जाता है।

अबतक इस अर्थका भलीभाँति विवरण किया गया कि भक्ति-साधनाके प्रारम्भमें श्रद्धा, सत्सङ्ग और भजन-क्रिया होती है, तदनन्तर अनर्थ-निवृत्ति, निष्ठा और रुचि होती है। इसके बाद आसक्तिभाव और प्रेमका अभ्युदय होता है। इसके बाद भी एक-पर-एक विशिष्ट स्वादवाले स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव आदि अत्यन्त मधुर फल लगते हैं भक्ति-कल्पलताके ऊपर-ऊपरके पल्लवोंमें। साधकका देह उनकी आस्वाद्य सम्पत्ति उष्णता-शीतताके सम्मर्दको सहन करनेमें समर्थ नहीं होता है, इसलिये उनका विवरण यहाँ नहीं दिया गया।

रुचि—आसक्ति, भाव, प्रेम ये साक्षात् अनुभवके विषय होते हैं—इसके सम्बन्धमें अनेक प्रमाण विद्यमान हैं; परंतु उनका यहाँ उल्लेख नहीं किया जाता; क्योंकि वे इस रसानुभूतिके प्रसङ्गमें रूक्षता लानेवाले हैं—यदि उनकी अपेक्षा हो तो आकर-ग्रन्थोंमें ही उनका अनुसंधान करना चाहिये।

इसका तत्त्व यह है। अहंकारकी दो वृत्ति है—पहली अहंता और दूसरी ममता। ज्ञानसे इन दोनोंका लय होनेपर मोक्ष हो जाता है। यही दोनों जब देह-गेह आदि विषयोंमें होती हैं, तब बन्धन होता है। परंतु जब यही दोनों वृत्ति इस प्रकारकी हो जाती हैं कि मैं प्रभुका सेवक-जन हूँ—और प्रभु मेरे सेव्य हैं। अपने परिकरोंके सहित स्वयं भगवान् रूप-गुण-माधुरीके महोदधि हैं; इस प्रकार जब अहंता, ममता भगवान्‌के पार्षदरूप-विग्रह और भगवद्विग्रह आदिमें होती है, तब प्रेमका उदय होता है। प्रेम बन्ध और मोक्ष दोनोंसे विलक्षण है। वह पुरुषार्थ-चूडामणि है।

इसके उदयका क्रम ऐसा है, जबतक अहंता और ममता केवल व्यवहारमें ही घनीभूत हो रही है, तबतक केवल संसार-ही-संसार है ! परंतु जब मैं वैष्णव हो जाऊँ और अपने प्रभु भगवान्‌की सेवा करूँ, वे ही मेरे सेव्य हों। इस प्रकार भगवत्कृपासे श्रद्धाकणिका हृदयमें आती है; तब उसमें पारमार्थिकताकी गन्ध आ जाती है और भक्तिमें अधिकार हो जाता है। तदनन्तर साधुसंग मिलनेपर पारमार्थिकताकी गन्ध घनी हो जाती है। इसके बाद भजन-क्रियाके अनिष्ठित रहनेतक परमार्थ-वस्तुमें एकदेशव्यापिनी वृत्ति रहती है और व्यावहारिक विषयमें प्रायिका रुचि उत्पन्न होनेपर परमार्थमें ही आत्यन्तिकी वृत्ति रहती है—व्यवहारमें गन्धमात्र। भावका उदय हो जानेपर परमार्थमें ही आत्यन्तिक वृत्ति रहती है। व्यवहारमें तो बाधितानुवृत्ति न्यायसे केवल आभासमयी ही होती है। प्रेमका उदय होनेपर अहंता-ममताकी वृत्ति परमार्थमें परम आत्यन्तिक और व्यवहारमें एक भी नहीं।

इसी प्रकार भजनक्रिया प्रारम्भ करनेपर जो भगवद्-ध्यान होता है, उसमें अन्य वार्ताओंका सम्पर्क रहता और वह क्षणिक भी होता है। निष्ठाका उदय हो जानेपर ध्यानमें अन्य वार्ताका आभासमात्र रहता है और रुचिका उदय हो जानेपर तो बहुत समयतक ध्यान होता है और दूसरी बातोंका उसमें सम्बन्ध नहीं होता। आसक्तिमें ध्यान अति गाढ़ा हो जाता है, भावकी स्थितिमें ध्यान करते ही भगवान्‌की स्फूर्ति

होने लगती है। प्रेममें स्फूर्ति विलक्षण रूप ग्रहण कर लेती है और भगवान्‌का दर्शन भी होता रहता है।

आठवीं अमृतवृष्टिके अन्तमें ग्रन्थकार कहते हैं—

माधुर्यवारिधि भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यसे उद्धृत रसोंके द्वारा यह 'माधुर्यकादम्बिनी' सम्पूर्ण जगत्‌को तृप्त कर दे। यही उनकी आन्तरिक आकांक्षा है। *

आत्मनिरीक्षण

(लेखक—साधुवेषमें एक पथिक)

प्रत्येक मनुष्य अपनी-अपनी समझके अनुसार स्वेच्छित पूर्णता चाहता है, किसी-न-किसी प्रकारकी कमीसे वह अशान्त है, अशान्त होकर पूर्णता-प्राप्तिके प्रयत्नमें संलग्न है। करोड़ों मनुष्य ऐसे भी हैं, जिन्हें अपने प्रयत्नमें भूल, भ्रम तथा अज्ञानका ज्ञान ही नहीं है, वे अनवरत श्रम करते जा रहे हैं और थककर विश्राम पाना चाहते हैं। उन्हें विश्राम-स्थल तथा उसके साधनका ही पता नहीं है।

एक गृहकक्षमें मैंने एक पक्षीको तृणोंद्वारा एक छिद्रके भीतर रहनेका घोंसला बनाते देखा, वह पक्षी तृण लाकर ज्यों ही रखता था, वह भूमिपर गिर जाता था, पक्षीको यह ज्ञान न था कि तृणके लिये जबतक टिकनेका सहारा न होगा, तबतक कितना भी श्रम करता रहे, वह व्यर्थ होगा। मुझे उसकी भूलपर दया आयी और उठकर एक लकड़ी तृण टिकनेके लिये लगा दी, उसीके सहारे चोंचद्वारा श्रमपूर्वक लाये गये तृण टिकने लगे। सम्भवतः इसी तरह अदूरदर्शी अल्पज्ञ तथा अहंकारसे भरे भ्रमित मनुष्यको अदृश्य सहारेकी आवश्यकता रहा करती है और ऐसा सहारा प्रत्येक मनुष्यको मिलता ही है पर अज्ञानी-अभिमानी मनुष्य उस पक्षीकी भाँति यह नहीं जान पाता है कि मेरी असफलतामें सफलताका साधन किसने प्रस्तुत कर दिया। अहंकारी मनुष्य अपने श्रमकी असफलतासे अशान्त होता है और जब किसी अदृश्य दयाद्वारा सफल होता है, तब अपने श्रमको सफल मानकर अपनी अहंकृतियोंसे संतुष्ट होता रहता है। अहंकारयुक्त मनुष्य सफलतासे कितनी ही बार संतुष्ट होता रहे, अनुकूलतासे सुखी होता रहे तथा तृप्तिका गीत गाता रहे पर वह तबतक सदा दरिद्र और भिखारी ही बना रहेगा, जबतक अपनी भूल, भ्रान्ति और अज्ञानको नहीं जानेगा।

यह अहंकार ही है जो अपनी सभी कृतियों, मान्यताओं और जानकारीको ठीक ही समझकर संतुष्ट हो रहा है। यद्यपि यह अपनी कृतियोंके परिणाममें दुःख भोग रहा है, अपनी मान्यताओंके पीछे शक्ति खोकर अशान्त हो रहा है, अपनी जानकारीकी सीमामें बन्धनसे जकड़कर पराधीनतासे व्यथित हो रहा है, तथापि किसी मूढ़ पशुकी तरह लोभसे सुखके श्रम करता जा रहा है। प्रभुकी कृपासे ही कभी विश्रामका सुयोग सम्भव है।

अविवेकी मनुष्य परम प्रभुके विधानसे मिली वस्तु अपनी मानकर लोभी, मोही तथा अभिमानी बनता है। उनकी दया-कृपाको न जानकर सम्बन्धित व्यक्तियोंको दयालु दाता मानकर रागी बनता है तथा किसीको दुःखदाता मानकर द्वेषी हो जाता है। सद्गुरु ज्ञानने हमें सावधान किया है कि यदि तुम अपने-आपको सत्संगी अथवा साधक मानते हो तो जो कुछ भी तुम्हें देहादि वस्तुएँ मिली हैं, उन्हें अपनी न मानकर परम प्रभुके विधानसे मिली जानो। वस्तुओंकी सङ्गासक्तिसे ही विकारोंकी उत्पत्ति होती है; अपने ही द्वारा अपनेमेंसे सङ्गासक्ति, ममता तथा अहंताका त्याग करना है। इस तरहका त्याग तभी सुगम होता है, जब परम प्रभुके नित्य योगकी अभिलाषा होती है। भोग-वृत्तियोंसे नित्य योग ढका है, सत्सङ्गद्वारा भोगवृत्तियाँ शान्त होती हैं। सत्सङ्ग किसी अन्यद्वारा नहीं, प्रत्युत अपने आप-द्वारा ही असङ्ग होनेपर होता है। सत्सङ्गके लिये जो कुछ विनाशी है, अपनेसे भिन्न है, उसके प्रति अपनत्वका भाव त्याग ही देना श्रेयस्कर है।

हम जन्म लेनेके पश्चात् ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा जो कुछ देखते हैं और देखे हुएके विषयमें जो कुछ सुनते हैं, वही मनसे

* श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती महोदय वैष्णवशास्त्रके उच्चकोटिके अनुभवी विद्वान् हुए हैं। उनकी 'सारार्थदर्शिनी' नामक श्रीमद्भागवतकी व्याख्या प्रसिद्ध है। उन्हींके द्वारा चरित 'माधुर्यकादम्बिनी' नामक संस्कृत ग्रन्थका श्रद्धेय स्वामीजीने यह बड़ा सुन्दर हिंदी-भाषान्तर किया है। यद्यपि पूरा अनुवाद नहीं है तथापि स्वाभाविक प्रवाहमें कहीं कोई त्रुटि नहीं आयी है। 'कल्याण'के भावुक पाठक इस परम मधुर और अनुभवपूर्ण कृतिसे लाभ उठावें, यह निवेदन है—सम्पादक

मान लेते हैं। किसी भी वस्तु या व्यक्तिके प्रति सुनकर ही धारणा बनाते हैं और जो कुछ नेत्रोंसे नहीं देख पाते, उसके प्रति सुन-सुनकर ही कल्पनाके चित्र गढ़ लेते हैं—इस प्रकार हम अपनी ही मान्यताओं, धारणाओं और कल्पनाओंके मोही, लोभी, कामी तथा अभिमानी बनकर सुखके अन्तमें दुःखी हो रहे हैं, शान्ति पानेके स्थानमें अशान्त और स्वाधीन न होकर पराधीन हो रहे हैं, अहंकारवश अपने अज्ञान, भ्रम और भूलको नहीं देख पाते हैं।

सौभाग्य, सुसङ्ग तथा सुसंस्कारसे प्रेरित होकर अपने धर्मग्रन्थ—श्रीभगवद्गीता, रामायण और शास्त्र-पुराणोंके अध्ययन-श्रवण करते हुए यह तो जान लेते हैं कि गीतामें क्या लिखा है, रामायणके पात्रोंमें किसने क्या-क्या भला-बुरा किया है। पर हम स्वयं क्या करते हैं—इसका अध्ययन नहीं कर पाते हैं। हम अनेकों साधक भगवान्‌को तो मानते हैं पर उनके आदेश-उपदेश नहीं मानते। प्रायः हम अपनी रुचि-पूर्तिके लिये भगवान्‌की पूजा करते हैं और प्रसन्न होते रहते हैं पर प्रभु किस तरह प्रसन्न होंगे—इसकी खोज नहीं करते, प्रायः हम अपने अनुकूल भगवान्‌के श्रीविग्रहको सजाकर संतुष्ट होते हैं, भगवान्‌के अनुकूल स्वयं बननेके लिये उत्सुक आतुर नहीं होते। हम अनेक साधक अपनी अहंकृतियों, स्वीकृतियों और मान्यताओंकी परिधिमें संतुष्ट होते रहते हैं, पर हमारे साथ परम प्रभु किस रूपसे निरन्तर मिले हैं—इसका अनुभव नहीं करते। हम प्रायः सत्यकी अनुभूति नहीं, संतोषको ही खोज रहे हैं तथा किसी भी भावनात्मकरूपसे तृप्त होते रहते हैं।

हम अपनी धारणाओंमें संतुष्ट रह सकते हैं; पर निरपेक्ष शान्ति और सत्यका अनुभव नहीं कर सकते। अनेक साधकोंमें कोई-कोई सावधान होकर प्रज्ञाकी आंशिक जागृतिमें इतना तो समझ पाते हैं कि हमें जो कुछ भी परम प्रभुका प्रेम प्राप्त है, वह अपनी ही स्वीकृतियों और मान्यताओंकी सीमासे घिरा है। इसी तरह हमें परम प्रभुका जो ज्ञान प्राप्त है, वह हमारे अहंकारकी सीमित जानकारीसे घिरा है। हमें अनन्त प्रभुकी जो शक्ति सुलभ है, वह तुच्छ संकल्पोंसे घिरी है तथा जो नित्य जीवन प्राप्त है, वह भी जडत्वसे घिरा है। हम उन्हींमें संतुष्ट हो रहे हैं; पर भय, चिन्ता और अशान्तिसे मुक्त नहीं हैं। हम अहंकारकी सीमामें सीमित क्षणिकके भोगी बने हुए हैं, असीम-शाश्वतके योगी नहीं हो पाये। हमें गुरुज्ञानद्वारा यह ज्ञात हो सका है कि यदि 'अहम्' रूपी चेतन बिन्दुको अनन्त चेतन-सिन्धुमें अनुभव करने लगें तो जहाँ हम क्षणिक सुखके भोगी बने हैं, वहीं शाश्वत सत्यके योगी हो सकते हैं।

अपना यह अज्ञान ही अहंकारका केन्द्र बना हुआ है; आत्मज्ञानके द्वारा ही हम प्रेममय प्रभुमें अपने-आपको नित्य शान्त-स्वस्थ अनुभव कर सकते हैं। आत्मज्ञानमें जहाँ अहं शून्य होता है, वहीं पूर्ण प्रेमका अनुभव होता है। प्रेमकी प्राप्ति ही साधनाकी सर्वोपरि सिद्धि है। हमें सावधान किया गया है कि जो स्वयंको खोकर अज्ञानी रहकर संसारका सब कुछ पानेके प्रयासमें संलग्न है, वह अहंकारसे विमूढ़ है; पर जो सब कुछसे अनासक्त होकर सत्य परमात्मामें ही विश्राम पानेकी धुनमें है, वही सजग विद्वान् है। स्वयंको खोकर संसारमें जो कुछ पाया जाता है, उसे किसी दिन मृत्यु व्यर्थ कर देती है; हमें तो वहाँ होना है, जहाँ मृत्यु नहीं पहुँचती है। जहाँ मृत्यु नहीं पहुँचती, वियोगकी सम्भावना नहीं रहती, वहीं हमारा परमाश्रय है। उसकी अनुभूतिके लिये हृदय तत्पर नहीं है, प्रज्ञा पूर्ण जाग्रत् नहीं है। हमें समझाया गया है कि जो सब कुछ छोड़नेका साहस करता है, वही परमाश्रयको देखनेका अधिकारी हो जाता है। जहाँसे हम कुछ पकड़कर रागी बने हुए हैं, वहींसे छोड़कर—त्यागी होकर अनुरागी हो सकते हैं। जबतक हम नित्य ज्ञानमें जीवनको नहीं जानते, तबतक हम मृत्युसे भयातुर रहते हैं। जबतक हम नित्य ज्ञानमें निरन्तर योगानुभव नहीं करते, तभीतक संयोगमें सुखासक्त और वियोगसे दुःखाक्रान्त रहते हैं। जबतक हम नित्यज्ञानमें स्वको नहीं जानते, तबतक पराश्रय लेकर पराधीन रहते हैं। जबतक हम 'मैं' की सीमासे घिरे रहते हैं, तब तक 'मैं' के भीतर रहनेवाले संसारके शासनसे मुक्त नहीं हो पाते हैं और 'मैं' के बाहर परमात्माका दर्शन नहीं कर पाते। जबतक हम पराश्रित सुखका मूल्य बढ़ाते रहते हैं, तबतक दुःखके घेरेको पार नहीं कर पाते। निरन्तर ही जिस ज्ञान-प्रकाशमें हम सब कुछ जानते-समझते हैं, उसी प्रकाशकी महिमा सुनकर उसे पानेका मार्ग पूछ रहे हैं। प्रकाशमें रहते-चलते हुए हम उसे अनुभव नहीं कर पाते हैं।

हम बाहर अनेक वस्तु-व्यक्तिके विषयमें ज्ञानी बन रहे हैं पर, स्वके विषयमें अज्ञानी सिद्ध हो रहे हैं; बाहर ज्ञानका अभिमान बढ़ रहा है, पर भीतर अज्ञान घनीभूत हो रहा है। बाहर जितनी शक्ति, सम्पत्ति तथा योग्यता बढ़ रही है, उतनी ही तीव्रतासे भीतर अशान्तिकी वृद्धि हो रही है। अनेक साधकोंके जीवनमें जब कभी बाहर धन बढ़ा है, तभी भीतर लोभ बढ़ा है।

जब कभी पदाधिकार मिला है, तभी अहंकार-अभिमानकी वृद्धि हुई है। जब कभी सुखद संयोग हुआ, तभी मोहकी मात्रा बढ़ती गयी है, जब कभी बाहर भोग-सामग्री बढ़ी है, तभी भीतर कामनाओंकी वृद्धि हुई है। प्रायः देखा यही जाता है कि बाहर जो कुछ बढ़ता है, वह किसी समय छिन जाता है, पर भीतर जो कुछ लोभ, मोह, अभिमान आदि दोष बढ़ते हैं, उन्हें कोई नहीं छीन पाता है, उन्हें तो स्वयं ही छोड़ना पड़ता है।

ऐसा ज्ञात हुआ है कि जहाँतक हम कुछ पानेके लिये भाग-दौड़ कर रहे हैं, वहाँतक अहंकारमय बने हैं; जहाँतक अहंकार है, वहाँतक अज्ञान है। वास्तविक ज्ञानके लिये अज्ञानसे मुक्त होना अनिवार्य है। ज्ञानकी प्राप्ति स्वयंके बाहर नहीं होती; ज्ञानमें जब अन्य कुछ नहीं रह जाता, वही मुक्तस्वरूप आत्मा है। अहंकार ही आत्मज्ञानमें आवरण है।

'स्व' से भिन्न जो कुछ है, वही पर है, परके सङ्ग, स्वीकृति और संग्रहमें ही अहंकार टिक रहा है। अहंकार-को साक्षी होकर देखना ही इसे मिटानेकी साधना है; इस साधनामें श्रमकी नहीं, सहज शान्तिकी अपेक्षा है; विचारकी नहीं, निर्विचारकी अपेक्षा है, किसी भी सङ्गकी नहीं, असङ्गता-की अपेक्षा है। जो नित्य प्राप्त है, उसे रुककर देखने मात्रकी अपेक्षा है, कहीं आने-जाने, कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं है। जो सदा है, सर्वत्र है, अभी है, यहीं है वही सनातन सत्य परमात्मा है, 'स्व' में निरन्तर प्रतिष्ठित है।

वेणुगीत

('श्री'श्रीकृष्णप्रेमी महाराज विरचित एवं श्रीयुक्त टी० सी० श्रीनिवासनद्वारा अनूदित)

[गताङ्क पृष्ठ १०३४ से आगे]

यमुनाजीके तटपर विशाल वट-वृक्ष है। उसीका नाम 'वंशीवट' है। श्रीकृष्ण उसपर चढ़ते हैं और वहाँ बैठकर वंशी बजाते हैं अतएव उसका यह 'वंशीवट' नाम पड़ा। वे वृक्षपर क्यों बैठते हैं, क्या भूमिपर बैठनेका स्थान नहीं है ? स्थान तो है, परंतु इसका दूसरा ही कोई कारण है। प्रातःकाल श्रीकृष्ण गाय चराने आते हैं तो फिर सायंकालको ही घर लौटते हैं। तबतक श्रीकृष्णका दर्शन किये बिना कृष्णानुरागिणी श्रीगोपियोंसे रहा नहीं जाता। श्रीकृष्णकी भी यही दशा होती है। गोपियोंके दर्शन किये बिना उनसे भी नहीं रहा जाता। अतः वे एक ऊँचे वृक्षपर चढ़कर वहाँ बैठ जाते हैं जहाँसे दूरपर गोपियोंको आते-जाते देख सकते हैं। श्रीगोपियाँ भी जल ले जानेके बहाने यमुनाके तटपर आती हैं और यमुनाविहारी प्रियतम श्यामसुन्दरके दर्शन कर जाती हैं।

आज भी श्रीकृष्ण यथापूर्व वृक्षपर बैठकर वंशी बजाने लगे। गोपियाँ आकर नीचे बैठ गयीं। उनके मनमें इच्छा थी कि हम भी श्रीकृष्णके पास ही बैठें तो कितना आनन्द हो। परंतु उन बेचारियोंको वृक्षपर चढ़ना नहीं आता था। मुनिजन तो आज पक्षी बन गये। उड़-उड़कर आरामसे वृक्षकी शाखाओंपर जा बैठे। पक्षियोंके झुंड-के-झुंड, न शाखाएँ दीखती थीं, न पत्ते। इतने पक्षियोंके होनेपर भी कलरव नहीं होता था। वे मुनिजन हैं न, अतः मौन ही बैठे थे। वे बार-बार गोपियोंकी ओर देखते और हँसते थे। मालूम है, इसका क्या कारण है ? जब ऋषिगण श्रीकृष्णको देखने आते, तब ये गोपियाँ इस तरह बैठती थीं कि उन ऋषियोंको बैठनेका स्थान प्राप्त नहीं होता था। अब तो श्रीकृष्ण ऐसे ऊँचे स्थानपर बैठ गये हैं कि ये वहाँ पहुँच ही नहीं सकीं। मुनिजन उड़कर उनके पास जाकर बैठ गये। परंतु आज गोपियोंको एक दूसरा ही विलक्षण सौभाग्य प्राप्त हुआ, वह था श्रीकृष्णके चरणोंका दर्शन करना। श्रीकृष्ण वटवृक्षकी शाखापर बैठे थे और उनके चरण शाखासे नीचे लटकते थे। स्वर्णनूपुरोंसे विभूषित उनके चरण-कमल बहुत ही सुन्दर दिखायी देते थे। कमल-के सदृश अरुण चरणतल और श्वेतमुक्ता-जैसे चमकते नख गोपियोंके मनको हरे लेते थे। अपनेको सर्वथा भूलकर वे ऊपरकी ओर मुँह उठाये बैठी थीं।

कुछ संन्यासी महानुभाव ऐसा कहा करते हैं कि पूर्व-जन्ममें जो भूत और पिशाच होते हैं, वे ही जीव इस बार स्त्री-योनिमें जन्म लेते हैं। परंतु सच्ची बात तो यह है कि प्रेम और नम्रता, निःस्वार्थ जीवन और सहनशीलता, सेवा और

सहृदयता, क्षमा और माधुर्य एवं श्रद्धा और भक्ति आदि सद्गुणोंका निवासस्थान है—स्त्री-जाति। पता नहीं, स्त्रियोंको देखकर संन्यासियोंके भयभीत होनेका क्या कारण है? श्रीकृष्ण-भक्त तो इस प्रकार डरते नहीं; क्योंकि उनका अभिप्राय है कि संसारकी समस्त स्त्रियोंका समूह श्रीकृष्णकी अपनी सृष्टि है। तभी इनमें ये सद्गुण भरे हैं। वे इसे अपने भाग्यकी कमी समझते हैं कि हम स्त्री-जातिमें नहीं उत्पन्न हुए। पर अपने पुरुषत्वका त्याग करके वे अपनेमें स्त्रीत्वको आरोपित कर आश्वासन प्राप्त करते हैं कि यदि हम स्त्री नहीं हैं तो कोई हानि नहीं, स्त्रीभावको ग्रहण करके तो हम भी स्त्री हो ही गये। पुरुषत्वके रहते कोई भी गोपियोंके भावको नहीं समझ सकता। स्त्रियाँ ही तो स्त्रियोंके हृदयको समझ सकती हैं। अतः गोपियाँ ही गोपियोंके यथार्थ महत्त्व-तत्त्व और स्वरूपको समझ सकती हैं। 'गोपी' शब्दका मतलब गोकुलमें मनुष्ययोनिमें उत्पन्न गोप-बालिकाएँ हैं—ऐसा हमें कभी नहीं समझना चाहिये। जो गायें श्रीकृष्णके चरणकमलको चाट रही हैं, वे भी गोपियाँ हैं। जो लताएँ श्रीकृष्णको देखकर अपने अंदरसे मधुर सुगन्धित पुष्पोंको प्रकट करके प्रफुल्लित होती हैं, वे भी गोपिकाएँ हैं। श्रीकृष्ण-को देखते ही जो हरिनियाँ दौड़कर अपने-अपने प्रियतमोंको लिवा लाती हैं और जोड़ी बनकर श्रीकृष्णका रूप-रसानुभव करती हैं, वे भी गोपियाँ हैं। यमुनादि नदियाँ भी गोपियाँ हैं जो अपने जलमें क्रीडार्थ अवतीर्ण श्रीकृष्णके शरीरको शीतल करके स्वयं भी शीतल होती हैं।

> नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत-
> मावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः।
> आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे-
> र्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः॥
> (श्रीमद्भागवत १०।२१।१५)

'उस समय यमुनादि नदियाँ श्रीकृष्णके वेणुगीतको सुनकर परवश हो गयीं। इनमें जो भँवर दीख रहे हैं, उन भँवरोंसे इनके हृदयकी श्यामसुन्दरसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षाका पता लग रहा है। उसीके वेगसे तो इनका प्रवाह-वेग रुक गया है। अपने जलसे श्रीकृष्णके चरणोंका आलिङ्गन करके ये तरङ्गकरोंसे कमल-पुष्पोंको उपहारके रूपमें लाकर उनके चरणोंपर अर्पण कर रही हैं।'

यमुनाजी कुछ दूरपर मुरलीका गान सुनकर उफन पड़ी। वह अपने उत्साहको स्वयं न रोक सकी। उसकी बड़ी इच्छा थी कि श्रीकृष्णसे मेरा सर्वदा ही संयोग बना रहे। परंतु श्रीकृष्ण कुछ काल जलक्रीड़ा करके भाग जाते थे। कभी-कभी तो किनारेतक आकर लौट जाते थे। यमुनाके मनमें बड़ी आशंका हुई कि 'श्रीकृष्ण इस समय भी वैसे ही न भाग जायँ।' इसीसे वह उछल-उछलकर देख रही थी। इतनेमें, उधर श्रीकृष्ण भी आ गये। श्रीकृष्णके सौन्दर्यका रसानुभव करती हुई वह धीरे-धीरे बह रही थी। श्रीकृष्ण-का आगमन देखकर उसको ऐसा लगा कि वह उससे क्रीड़ा करने नहीं आये। कुछ काल वायुसेवन करके यहाँसे कदाचित् चले जायँगे। पर वह इस तरह उन्हें छोड़ना नहीं चाहती थी। अतः लज्जा छोड़कर उसने अपने तरङ्ग-हस्तोंसे 'आ-आ' कहकर उन्हें बुलाया। भँवर-नेत्रोंसे घूम-घूमकर उनको देखा। श्रीकृष्ण उसके समीप आये। यमुनाके किनारे, छोरपर एक पुंनाग वृक्ष था। यमुना-प्रवाहके ऊपर तिरछी होकर उसकी शाखाएँ फैली थीं। श्रीकृष्णने सिरपर पगड़ी बाँधी। मुरली कमरमें खोंस ली। पेड़पर चढ़कर दोनों हाथोंसे शाखा पकड़े धीरे-धीरे पैर रखकर वे आगे बढ़े और बड़ी सावधानीसे शाखाके छोरपर जा पहुँचे। वहाँ अपनी टाँगें लटकाकर बैठ गये और स्वर्णनूपुरोंसे सुशोभित पैरोंसे यमुनाके जलमें विहार करने लगे। घुटनेतक उनकी जाँघें उत्कीर्ण नीलरत्नमय स्तम्भके समान, श्यामल वर्णके साथ, बहुत सुन्दर लगती थीं। उनके ऊपर एक छोटे पीताम्बरको कच्छ देकर उन्होंने बाँध रक्खा था। उनके वक्षःस्थलपर रत्नखचित कण्ठियाँ और मोतियोंके हार चमचमा रहे थे। एक बड़ी वैजयन्ती माला भी झूल रही थी। शरीरपरका दुपट्टा वायुमें लहरा रहा था। श्रीकृष्ण पूर्वकी ओर मुख किये बैठे थे और उनके रत्नाभरणोंकी आभा छिटक रही थी। उनके कानोंके कुण्डल झिलमिला रहे थे।

काले घुँघराले केश और उनपर मयूरपिच्छ—वायुमें नाच रहे थे। बिम्बारुण अधरोंपर मुरली विराजित थी। अँगूठियोंसे अलंकृत अँगुलियोंका स्पर्श पाते ही मुरली अपने-आप निनादित हो उठी और मधुर गानवर्षा करने लगी। यमुनाजी अपनी प्राशस्त्य भूमि तथा कर्तव्यको भी भूल गयी। यमुनाजीसे जल लेने जो गोपियाँ आयीं थीं, वे जिस प्रकार अपनेको और संसारको भी भूलकर ज्यों-की-त्यों खड़ी रह गयी थीं वैसे ही यमुनाजी भी स्तब्ध-सी हो गयी।

गोपियाँ परस्पर वार्तालाप कर रही हैं—सासजी डाटेंगी कि घाटपर जल लाने गयी तो क्यों इतना विलम्ब हुआ ! ननदजी उनकी हाँमें हाँ मिलायेंगी। पतिदेव तो उनकी बात मानकर ताड़ना करनेको तैयार हो जायँगे। पर हम क्या करें ? यहाँ आती हैं तो हमसे यहाँसे लौटकर जाया नहीं जाता !' गोपियोंकी बातें सुनते ही यमुनाजीको भी स्मरण आया कि उसका भी एक कर्तव्य था। वह था जाकर समुद्रराजसे मिलना। फिर भी श्रीकृष्णसे बिछुड़नेको उसकी इच्छा नहीं थी। अतः वह वृन्दावनमें ही ठहर गयी।

गोपियाँ आगे वार्तालाप करने लगीं—'जाने दो, इन सासजी और ननदजीको। इनकी बातोंपर कौन ध्यान दे ? पतिदेव तो बेचारे यथार्थमें हमपर कुपित होते नहीं। वे तो उनके सामने हमारी निन्दा करते-से दीखते हैं, परंतु अवसर पाकर हमें आश्वासन देते हुए कहते हैं कि 'तुम्हारे श्रीकृष्णके पास जानेको मैं अपना अहोभाग्य—सौभाग्य मानता हूँ। इस बातको रहने दो। अब यह बताओ कि श्रीकृष्णने जो तुम्हें फल-फूल उपहारमें दिये, उनमेंसे तुम कौन-सी वस्तु मेरे लिये लायी हो ?'

गोपियोंका यह मधुर वार्तालाप सुनकर यमुनाजीको भी एक युक्ति सूझी। उसने निश्चय किया कि यदि समुद्रराज अप्रसन्न होकर पूछेंगे कि तुमने क्यों इतना विलम्ब किया, तो मैं भी कहूँगी कि मैं श्रीकृष्णको देख आयी और आपके लिये प्रसाद भी ले आयी। समुद्रराजको भी श्रीकृष्णके दर्शन करनेकी बहुत इच्छा है। परंतु वे अपने इतने बड़े शरीरको लेकर वृन्दावनमें आ जायँ, तो सारा वृन्दावन ही बह जायगा, यही चिन्ता है उन्हें। तथापि पूर्णिमाकी चाँदनीमें वे उछल-उछलकर झाँक लेनेका प्रयत्न तो करते हैं। उन्हें श्रीकृष्णके दर्शन नहीं होते। यदि मैं श्रीकृष्ण-चरणोंमें समर्पित कमल-पुष्पोंको ले चलूँ तो मेरे पतिदेव आनन्दित होकर यह कहते हुए मेरा स्वागत करेंगे कि 'मेरी प्रियतमे ! कम-से-कम तुम श्रीकृष्ण-दर्शन कर आयी हो, यह क्या मेरा कम सौभाग्य है ?'

यह सोचकर यमुना अपने तरङ्ग-हस्तोंसे कमल-कुसुम तोड़ लायी। उसने श्रीकृष्णके चरणोंमें उनको समर्पित किया, जिन चरणोंसे उसके जलमें वे ताल-सा दे रहे थे। उसके बाद श्रीकृष्णके प्रसादके रूपमें उन पुष्पोंको अपने तरंग-हस्तोंसे लेकर वह भागती-सी बह रही थी। यमुनाजीका गोपी-भाव देखकर श्रीकृष्ण उसका रसानुभव करते हैं। यह प्रेम-भाव यमुनाजीसे गोपियोंने सीखा अथवा गोपिकाओंसे यमुनाजीने ? यह त्यागपूर्ण निःस्वार्थ प्रेम-भाव यमुना-भाव है अथवा गोपी-भाव है ? कदाचित् श्रीकृष्ण भी, जो कि सर्वज्ञ हैं, शायद इसे समझ नहीं सकते।

वेणुगीत—७

ब्रह्माको बड़ी इच्छा हुई कि मैं वृन्दावनमें तृणका ही एक जन्म पा जाऊँ। यदि वे समझते कि तृण चैतन्यहीन जड वस्तु है तो इस तरहकी वाञ्छा उनके मनमें उत्पन्न ही नहीं होती। तृणमें भी चैतन्य है और वह श्रीकृष्ण-माधुर्यका अनुभव करता है। तृण क्या, वृन्दावनमें रहनेवाला एक पत्थर भी श्रीकृष्ण-माधुरीका अनुभव करेगा। एक समय श्रीकृष्ण आकर एक पत्थरपर बैठ जाते हैं। गोपियाँ श्रीकृष्ण-स्पर्शकी प्रतीक्षामें बैठी रहती हैं पर उनको वह प्राप्त नहीं होता। परंतु इस पत्थरपर घंटों बैठकर मुरली बजाते रहते हैं श्रीकृष्ण। हम सोचेंगे कि यदि इस पत्थरको भी चैतन्य होता तो श्रीकृष्ण-माधुरीका कितना सुन्दर अनुभव करता वह, परंतु उसके तो चैतन्य नहीं। फिर भी उसपर जो बैठा है उसकी शक्ति अद्भुत है। जो चैतन्य-युक्त हैं उनको भी उनका सौन्दर्य जड मूर्ति बना देगा, एवं जड मूर्तिमें चैतन्य उत्पन्न कर देगा वह। श्रीकृष्णने सोचा—'यदि यह पत्थर एक गोपी हो तो कैसा होगा ?'

उनकी करुणाकी तो अवधि नहीं है। बस, उस पत्थरको चैतन्य प्राप्त हो गया। उसको धारण करते हुए वह आनन्दानुभव कर रहा है। जड पत्थरमें भी चेतनता आ जाय, तो तृणादिके बारेमें क्या कहना ? वृन्दावनमें जितने पेड़-पौधे, घास-फूस, पत्थर-काँटे, वृक्ष-लता, पशु-पक्षी थे—सभीमें श्रीकृष्णकी कृपासे चैतन्य आ गया और सब-के-सब चिद्रूप धारणकर उसका आनन्दानुभव कर रहे हैं। वास्तवमें श्रीकृष्णशक्तिस्वरूपिणी श्रीराधाजी ही नाना प्रकारके वृक्ष और लता, पशु और पक्षी आदिके रूप धारण करके श्रीकृष्णको आनन्दरसास्वादन करा रही हैं। राधा देवी चिदानन्दस्वरूपिणी हैं।' जब वही स्वयं वृन्दावन बनकर दीख पड़ती हैं और जगन्मोहन श्रीकृष्णको धारण करती हैं तब क्या यह कहनेकी भी आवश्यकता है कि वृन्दावनकी सभी वस्तुएँ चिन्मय हैं, न कि जड ?

वृन्दावनमें विद्यमान सभी वस्तुएँ श्रीकृष्ण-सुखकी इच्छा रखती हैं, श्रीकृष्णकी अनवरत सेवा कर रही हैं और

श्रीकृष्ण-रतिमें ही विमुग्ध हैं। उनमें वर्षाकालके मेघसमूह भी एक हैं, जो सर्वदा श्रीकृष्णके ऊपर छत्रके समान फैले रहते हैं। उनका भी यशोदाके समान वात्सल्यभाव है। यशोदाजी यह सोचकर दुखी होती हैं कि मैंने अपने परम सुकुमार गोविन्दको छत्र दिये बिना ही गायोंके पीछे वन भेज दिया। परंतु बादल इसका पूरा ध्यान रखते हैं। जहाँ कहीं जरा-सा भी सूर्यका आतप—स्वल्प-सा भी धूप श्रीकृष्ण-कलेवरपर पड़ता है तो ये बादल दौड़े आकर तुरंत श्रीकृष्णके ऊपर छत्री-से बन जाते हैं। यह है एक भावुक गोपीका वर्णन—

> दृष्ट्वातपे व्रजपशून् सह रामगोपैः
> सञ्चारयन्तमनुवेणुमुदीरयन्तम्।
> प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः
> सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम्॥
> (श्रीमद्भा० १०। २१। १६)

'व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण वेणु बजाते हुए, भाई बलदेवजी और ग्वालबालोंके साथ वृन्दावनकी कड़ी धूपमें गायें चराते फिर रहे हैं। यह देखकर आकाशमें बादलोंके मनमें प्रेम उमड़ आता है और वे आकर उनके ऊपर मँड़राने लगते हैं और नीलश्यामघन घनश्यामके ऊपर अपने शरीरको छाता बनकर उनको धूपसे बचा लेते हैं और उनके साथ-साथ चलकर उनपर पुष्पों*की वर्षा भी करते जाते हैं।'

वृन्दावनमें गायें चर रही हैं। वे घनी घासके मैदानमें बहुत दूर चली गयीं। श्रीकृष्ण गायोंका आह्वान करते हुए आते हैं। रत्न, वैदूर्य, गोमेद, मरकत, पुष्पराग आदि कई रत्नोंके उज्ज्वल आभूषणोंसे वे अलंकृत हैं। कटिमें पीताम्बर है, जो कोटि सूर्यके समान चमक रहा है। एक हाथमें मुरली और दूसरे हाथमें छड़ी लिये दौड़े आ रहे हैं। कुछ स्थानोंमें बिल्कुल ही वृक्ष नहीं हैं, इससे वहाँ कड़ी धूप है। उनके आभूषणोंपर जब सूर्यकी किरणें पड़ती हैं, तब वे चमक उठते हैं। धूपमें घूमनेके कारण उनके मुखमण्डलपर पसीनेकी बूँदें उभर आयी हैं। उस समय मेघसमूह आकाशमें कहीं पड़े थे। सहसा उनके मनमें प्रेमकी एक पवित्र भावना उठी। उस भावनासे श्रीकृष्ण-रति उत्पन्न हुई। श्रीकृष्ण-रतिमें वात्सल्य-भाव था। वात्सल्य-भावके कारण वे बादल मैया यशोदा-से बन गये। अतः झट वे दौड़ पड़े और जहाँ-जहाँ श्रीकृष्ण जा रहे थे, वहाँ-वहाँ जाकर अपने शरीरसे छाया देते रहे। इतना ही नहीं, वे पुष्पोंकी भी वर्षा कर रहे थे—ऐसा एक गोपी बोली।

तब एकने पूछा—'यह कैसे हो सकता है? यह तो आश्चर्यसे भी आश्चर्य है। मेघसमूहसे भला पुष्प कैसे निकले? 'मेघपुष्प', 'वन्ध्या-पुत्र' तथा 'गन्धर्व-नगर' कहकर कुछ लोग बातें बनाते हैं। तुम्हारे वचन भी वैसे ही हैं।'

'जाओ, जाओ! क्या तुम नहीं जानतीं कि श्रीकृष्ण एक अद्भुत बालक हैं, वे सर्वसमर्थ हैं, जो सत्यको असत्य और असत्यको सत्य बना सकते हैं।' जब श्रीकृष्णने कालिय सर्पके फनोंपर नृत्य किया, तब देवताओंने पुष्पोंकी वर्षा की थी न। उन पुष्पोंमें कुछ पुष्प बादलोंके बीचमें ही अटक गये थे, वे ही पुष्प अब श्रीकृष्णके ऊपर बादलोंसे गिर पड़े। श्रीकृष्णने सिर उठाकर देखा कि नये बादलोंके झुंडसे पुष्पोंकी वर्षा हो रही है। उनके आनन्दकी अवधि ही नहीं रही। वर्षा होती तो वे गिरिवरको ही उठाकर छातेकी तरह धारण कर लेते न। वैसा उन्होंने नहीं किया। उनको ऐसा लगा मानो माता ही फूलोंसे शृङ्गार कर रही है। अतः प्रसन्न चित्तसे वे ज्यों-के-त्यों खड़े रहे।

एक बड़ा ऊँचा वृक्ष हरा-भरा खड़ा है। उसके पास एक कमल-सरोवर है। उसके किनारेपर अभिनव घासकी हरी भूमि है। गायें और हिरन घास चर रहे हैं। वटवृक्षकी विशाल शाखाओंपर सैकड़ों पक्षीगण घोंसले बनाकर अपना गृहस्थ-जीवन बिता रहे हैं। सायंकाल हो चुका। सूर्य अस्ताचलकी ओर बढ़ रहे हैं। वृन्दावनमें प्रकृतिका सौन्दर्य पूर्ण रूपसे झलक रहा है। ऐसे सुन्दर वृन्दावनके अनुरूप हैं—अनन्त सौन्दर्यनिधि रसिकेन्द्र श्रीकृष्ण और रसिकेन्द्रकी अनुरूपा हैं श्रीकृष्ण-जीवना श्रीराधा। कमलसरोवरमें उतरनेके लिये एक मनोहर स्फटिकमय घाट बना हुआ है। एक सीढ़ीपर श्रीकृष्ण बैठे हैं। नवयुवराजके सिरपर मयूर-शिखासे अलंकृत एक मुकुट, ललाटमें कस्तूरी-तिलक है, कानोंमें मकर-कुण्डल, वक्षःस्थलमें हरिचन्दन, कटिमें पीताम्बर, करोंमें कङ्कण, कमरमें किंकिणि, चरणोंमें नूपुर। ऐसे आभूषणोंसे अलंकृत होकर श्रीकृष्ण कोटि मन्मथ-मन्मथ लावण्याकृतिके साथ विराजमान हैं।

* टीकाकारोंने इसका अर्थ पुष्प न करके यों किया है—'मेघ नन्हीं-नन्हीं बूँदें-फुहियाँ बरसाते हैं, मानो श्वेत पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं।'

इसी समय दिव्य विद्युल्लताके समान प्रभामयी श्रीराधा मत्त मरालकी-सी गतिसे कटिपर एक कनककलश धरे वहाँ आती हैं। ऐसा भाव व्यक्त करती हुई—मानो यदृच्छया वहाँ उनका श्रीकृष्णसे मिलन हो गया। राधा जो घाटमें उतर रही थीं, वहीं कलशको लुढ़काकर श्रीकृष्णके समीप आकर बैठ गयीं। मुरली बजाते-बजाते श्रीकृष्णने अपनी कनखियोंसे उन्हें सप्रेम देखा। राधाने अपने कोमल कर-कमलोंसे उनके चरणोंका संवाहन करते-करते प्रेम-विवश हो, उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया। कुछ पुलिन्द जातिकी कन्याएँ ये सब दृश्य वहाँ देख रही थीं।

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जराग-
श्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन
लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम्॥
(श्रीमद्भा० १०। २१। १७)

'श्रीकृष्ण-भावनासे पूर्ण कुछ पुलिन्द-कन्याएँ (भीलनियाँ) उनके दर्शनसे—मिलनाकाङ्क्षासे पीड़ित हुईं। वे क्या देखती हैं कि वही केसर (कुंकुम) पंक जो पहिले श्रीराधाके वक्षःस्थलको अकुलंत करता था और जो फिर श्रीकृष्णके चरण-कमलोंपर विराजित था, अब भूमिके तृणोंमें शोभायमान है। झट उस कुंकुम-पंकको श्रद्धा और प्रेमसे लेकर वे अपने स्तनोंपर तथा मुखोंपर लगाकर अपने हृदयके प्रेम-संतापको शान्त करती हैं।'

वृन्दावनमें पुलिन्द नामक एक भील जाति है। उनकी कन्याएँ श्रीराधा-कृष्णरूपी इस अनुपम और मनोहर युगलको देखकर किंकर्तव्य-विमूढ़ रह गयीं। गोपियोंमें जिस प्रकार श्रीकृष्ण-रस, राधा-भाव और विशुद्ध प्रेमका ज्ञान था, वैसा इन्हें कुछ न था। परंतु श्रीकृष्णके विश्वविमोहन रूप-सौन्दर्यसे आकृष्ट होकर वे कृष्ण-रसमें लीन होने लगीं। श्रीकृष्णसे मिलनेकी उत्कट उत्कण्ठा उत्पन्न हो गयी उनके मनमें। इसी समय उन्होंने देखा कि राधा बहुत ही स्वाधीनतासे श्रीकृष्णके समीप बैठकर सरस संलाप कर रही हैं। इसे देखते ही उनके मनमें मिलनाकाङ्क्षा तीव्र हो गयी, पर श्रीकृष्ण तो विशुद्ध प्रेमसे वशीभूत होते हैं। अतः उन्होंने उनकी ओर मुड़कर देखा भी नहीं। इधर, इनकी मिलनाकाङ्क्षा बढ़ती गयी। वे दुखी हुईं कि राधाके समान हम भी श्रीकृष्णकी अपनी नहीं हैं। त्यागमयी श्रीगोपियोंका स्वभाव और लक्ष्य तो इससे सर्वथा भिन्न है। श्रीकृष्ण और श्रीराधा—युगलको मिलाकर, उन दोनोंके आनन्दरसास्वादनके दर्शनमात्रसे विशुद्ध रस प्राप्त करना ही गोपियोंका उद्देश्य है। वे भूलकर भी यह नहीं चाहेंगी कि हम स्वयं राधा बन जायँ। परंतु इन पुलिन्द-बालिकाओंमें ऐसी मति कहाँ? श्रीकृष्ण और राधाको देखकर वे उत्कण्ठित रह गयीं।

श्रीराधाजी इतनी देरतक श्रीकृष्णके चरण-पद्मोंको सप्रेम अपने हृदयपर रखकर उनका लालन कर रही थीं, पर इन भील-बालिकाओंको देखकर श्रीराधाजी श्रीकृष्णसे विदा हो गयीं। यदि श्रीकृष्णके पास उनसे मिलनेकी इच्छासे कोई आवे तो उसके लिये सुविधा प्रदान करना ही राधाका स्वभाव है।

श्रीकृष्ण भी उठकर चलने लगे। उनके पैरोंके घुँघुरू मधुर झनकार करते हुए निनादित हो रहे थे। राधाके स्तनोंका केसर (कुंकुम-पंक) जो अबतक श्रीकृष्णके चरणोंमें लगा हुआ था, उनके चलनेसे मार्गके तृणोंपर लगकर शोभा देने लगा। उस केसरकी सुगन्ध सारे वनमें फैल रही थी। भील-बालिकाएँ उस सुगन्धसे आकृष्ट होकर वहाँ दौड़ आयीं और केसरको लेकर अपने स्तनोंपर, ललाटपर लगाने लगीं। उस केसरकी महिमा अलौकिक है। निःस्वार्थ विशुद्ध प्रेमके मूर्तिमान् स्वरूप श्रीराधाके वक्षःस्थलका तथा स्वयं रसस्वरूप रसिकेन्द्र श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका वह स्पर्श प्राप्त कर चुका था और था वह उन दिव्य दम्पतिका परम पवित्र प्रसाद। अतः उसका स्पर्श करते ही पुलिन्द-ललनाओंके हृदयोंमें भी पवित्र त्यागमय गोपीभावका आविर्भाव हो आया। विशुद्ध प्रेमका रहस्य उनको स्पष्ट हो गया। राधाके प्रति उनके मनमें निःस्वार्थ भक्ति उत्पन्न हुई। तत्क्षण ही मुरलीधरने मुड़कर उनकी ओर देखा और प्रसन्नतासे मन्दहास करके उन्हें अपने समीप आनेका संकेत किया। बस, वे ललनाएँ भी झट उनके समीप दौड़ आयीं।

परमात्मा श्रीहरि, जो योगियोंको भी दुर्लभ हैं, उन भील-कन्याओंके पवित्र प्रेम-पाशमें बँध गये। उनका सारा संताप दूर हो गया। श्रीराधा देवीका प्रसाद ही तो इन सब अनुग्रहोंका एकमात्र कारण है न?

वेणुगीत—८

शीत-उष्ण तथा सुख-दुःख इन सबको सहकर पर्वतके समान अचल होकर दृढ निष्ठाके साथ भगवान्‌की भक्ति करना ही हरिदासोंका लक्षण है। निश्चल बैठकर हृदय-

गुहामें ही श्रीहरिका ध्यान करना, यही भागवतोत्तमोंकी रति है। दासवर्ग जिस प्रकार भगवान्‌की आराधना करते हैं, उसी प्रकार भागवतोंकी भी आराधना करते हैं। गोवर्धन गिरिकी ऐसे हरिदासोंसे तुलना करती हैं—गोपियाँ।

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्
पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥
(श्रीमद्भा० १०। २१। १८)

'यह गिरिराज गोवर्धन एक सर्वोत्तम भगवद्भक्त है। श्रीकृष्ण और बलरामके चरण-कमलोंके स्पर्शसे आनन्दित होकर सदा पुलकित रहता है। श्रीकृष्ण, बलराम, ग्वालबाल तथा उनके प्रिय परिवार एवं गोधनोंका सदा ही सत्कार-पूजन करता है। झरनोंका मधुर जल, घास, धान्य, कन्द, फल-मूल, कन्दरा आदि देता रहता है। अहोभाग्य है इस पर्वतका।'

यह गोवर्धन गिरि एक मुनिवरके समान लगता है जो यमुनाजीके किनारे बैठकर ध्यान कर रहा है। इस पर्वतपर तरह-तरहके पौधे और लताएँ तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्ष उत्पन्न हुए हैं और समय-समयपर जल-भरे मेघ-समूह आकर इसके शिखरपर आश्रय लेते हैं। इन सबसे यह पर्वत सर्वदा श्यामसुन्दर है। वृक्षोंसे पुष्पोंकी वर्षा होती रहती है। भ्रमरोंके गुंजारके साथ-साथ पक्षिगण सदा गाते रहते हैं। स्थान-स्थानपर मोरोंके समूह पंख फैलाकर नाचते रहते हैं। पर्वतके निर्झरोंसे मधुर जल बहता रहता है। गोपबालक, जो गाय चराने आते हैं, इन निर्झरोंके जलमें कूदकर जल-विहार करते हैं। मदनगोपाल गायोंको पर्वतकी तलहटीमें घास चरनेके लिये छोड़कर स्वयं उसके शिखरपर चढ़कर खेलते रहते हैं। पर्वतपर बहुत-से रत्न हैं, धातु हैं, फल हैं, फूल हैं, मधु हैं, मृग हैं और वहाँ मृगनयनी श्रीराधा भी आयेंगी। इस स्थितिमें श्रीकृष्णको वहाँ क्रीड़ा करनेका और कौन-सा कारण चाहिये?

पूर्वोक्त प्रकारसे मनमें कल्पना करके एक गोपबालिका बोली—'इस पर्वतपर गायें चरती होंगी, ग्वाल-बाल खेलते होंगे और श्रीकृष्ण एक गुहामें सिंहके बच्चेके समान विराजमान होंगे। वह कैसे सुन्दर होंगे? इस गोवर्धन पर्वतने कौन-सी तपस्या की है कि इसको श्रीकृष्णके दिव्य चरण-कमलोंका स्पर्श-सौभाग्य सदा-सर्वदा प्राप्त रहता है?'

दूसरी एक गोपी वर्णन करने लगी—'देखो, यह पर्वत एक हरिदासके समान लगता है। जिस प्रकार साधुजन शीतोष्ण तथा सुख-दुःखकी उपेक्षा करके निश्चल बैठकर ध्यान करते रहते हैं, उसी प्रकार यह पर्वत भी वर्षा और आतपकी परवा न करके इस वनमें स्थिर और निश्चल रूपसे विराजमान है। साधुओंकी हृदय-गुहामें जिस प्रकार श्रीकृष्ण रहते हैं, वैसे ही इसकी गुहामें भी वे सदा विहरण-विश्राम करते हैं। साधुजनोंके नेत्रोंसे बहनेवाले आनन्दाश्रुओंके प्रवाहके समान हैं इस गिरिसे निकलनेवाले निर्झरोंके प्रवाह। साधुओंके शरीरके रोमाञ्चके सदृश इस पर्वतपर उगे हुए तृण दीख पड़ते हैं। उनके पुलकित रोमकूपोंके अग्रभागपर स्थित स्वेद-बिन्दुओंकी तरह, तृणोंके ऊपर वृक्षोंसे गिरे पुष्प प्रकाशमान हैं। साधुओंके शरीरके कम्पके सदृश है—पर्वतके वृक्षोंके पत्तोंका वायुमें परिस्पन्दित होना। जिस तरह आचार्योंके संकीर्तित भगवन्नामोंको साधुजन दुहराते हैं, उसी तरह गोप-बालकोंके संकीर्तित 'हे कृष्ण! हे श्यामसुन्दर!' नामोंको यह पर्वत प्रतिध्वनित करता है। सभी जीव-जन्तु और प्राणी जैसे साधुओंका आश्रय लेकर निर्भय और सुखी रहते हैं, वैसे ही वे इस पर्वतके आश्रयमें भी निर्भय और सुखी रहते हैं। साधुजन तुलसीमाला और नलिनाक्षमालाको धारण करते हैं, इसी तरह यह पर्वत भी श्वेतवर्ण तथा कृष्णवर्णके कंकड़ोंसे अलंकृत है। साधु-जनोंके ऊर्ध्वपुण्ड्र-के धारण करनेके समान यह पर्वत श्वेतवर्ण तथा रक्तवर्णकी धातुओंसे विभूषित है। जिस तरह साधुजन भगवान्‌की आराधना करते हैं, यह गिरिराज भी पत्र और पुष्प, फल और जलसे श्रीकृष्णका सत्कार करता है। जिस रीतिसे साधुलोग भागवतोंका भी सत्कार करते हैं, वैसे ही यह पर्वत भी श्रीकृष्णके साथी ग्वालबालोंका, गायों तथा बछड़ोंका, जो कि श्रीकृष्णके साथ आये हैं, सत्कार अपने पत्र, पुष्प, फल और जलसे करता है। इस प्रकार भागवतोंके सभी लक्षण इस पर्वतमें विद्यमान हैं। अतएव मैंने इस पर्वतको भागवत-श्रेष्ठ बतलाया। कैसा है मेरा वर्णन? बताओ तो? एक गोपी-बोली।

श्रीकृष्णने दिनभर वृन्दावनमें ही विहार करते बिताया। वनके ऊँचे-नीचे सभी स्थानोंमें घूमते रहनेसे

श्रीकृष्णके चरण-कमल म्लान होकर मुरझा रहे थे। पैरोंमें बँधे घुँघरुओंके अंदर मिट्टी लगनेसे उनका नाद धूमिल हो गया। वृन्दावनकी धूलिसे कटिका पीताम्बर धूसरित हो गया। यशोदा मैयाका भेजा हुआ दध्यन्न खाये बहुत देर हो गयी। वह कभीका पच गया और पेट खाली हो गया। वन्य-पुष्पोंसे गुँथी हुई माला मुरझा-सी गयी। गलेकी घुँघुचीकी माला टूट गयी। शरीरपर गैरिक धातुओंसे लिखित सभी चित्र मिट गये। नयनोंमें लगा अञ्जन गलकर कपोलोंपर बहने लगा। ललाटपर सुशोभित कस्तूरी-तिलक शोभाहीन हो गया। बाँधे हुए केशोंका जूड़ा खुल गया। उसमें जो मोरपंख खोंसा हुआ था, वह भी एक ओरको झुक गया। इतना सब होनेपर भी कोटि-कोटि शरद्-चन्द्रको लज्जित करनेवाला मुखचन्द्र अपनी शीतल स्निग्ध ज्योत्स्नाधारा बहा रहा था, उसमें जरा भी कमी नहीं आयी। बछड़े, जो घास चर रहे थे, रँभाकर दौड़ आये और माताओंका दूध पीने लगे। यह देखकर वत्स श्रीकृष्णको भी अपनी माताका स्मरण हो आया। उन्होंने झट गोकुल जानेका निश्चय किया। सूर्य भी अस्ताचल जा पहुँचा। वहाँ एक विशेष लालिमा दिखायी दी, मानो उनकी माता आरती उतारकर उनका स्वागत कर रही हो। आकाश-मार्गमें श्रेणी बाँधकर पक्षीगण अपने घोंसलोंकी ओर उड़े जा रहे थे। गायें यथेष्ट घास चर चुकी थीं। उनके पेट भरे थे और थन फूले थे। वे सुखसे खड़ी होकर पूँछ हिलाती थीं और पागुर कर रही थीं। कुछ चपल गायें अब भी घास चर रही थीं। बछड़ोंके बार-बार थनोंमें सिरसे धक्का देनेसे उनके चरनेमें विघ्न पड़ता था। इसी समय गोपबालक श्रीकृष्णके पास आये और उन्होंने पूछा—'क्यों रे कन्हैया ! घर चलें ?'

'हाँ'—उत्तर दिया श्रीकृष्णने। बस, दुन्दुभि, ढक्का, मुरली, शंख और सिंगा बज उठे। कोई-कोई कर-ताल दे रहे थे। तब श्रीकृष्णने एक टीलेपर चढ़कर ऊँचे स्वरसे पुकारा—'हे कल्याणि ! हे सुरभि ! अरी नन्दिनि !···'अपना-अपना नाम सुनकर सभी गायें वेगसे दौड़कर श्रीकृष्णके पास आकर खड़ी हो गयीं। सबको हाँकते ग्वालबाल घरकी ओर चले। उनके बीचमें श्रीकृष्ण भी मुरली बजाते ललित गतिसे चलने लगे।

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार-
वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां
निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥
(श्रीमद्भा० १०।२१।१९)

साँवरे और गोरे श्रीकृष्ण और बलराम अपने गोप-बालक मित्रोंके साथ-साथ गाय चरानेके लिये एक वनसे दूसरे वन जा रहे हैं और उनके सिरोंपर नोवना (गाय दुहनेके समय पैर बाँधनेकी रस्सी और कंधोंपर फंदा लानेवाली दुष्ट गायोंको बाँधकर वशमें लानेकी रस्सियाँ) पड़ी हैं। वे मुरली बजाते रहते हैं। उस मुरलीकी मधुर ध्वनि-को सुनकर चेतन पशु-पक्षी आदि जीवजन्तु- जिन्हें चलनेका स्वभाव है, स्तब्ध हो जाते हैं और अचल वृक्ष जो जड हैं, पुलकित हो उठते हैं। कैसे आश्चर्यका विषय है कि जङ्गम वस्तुओंमें स्थावरोंका और स्थावरोंमें जङ्गम जीवोंका धर्म आ जाता है।

जब गायें दौड़ने लगीं, तब उनके खुरोंसे उड़ी हुई धूलि धूएँके समान चारों ओर फैल गयी। वायुने, जो पुष्पों-की सुगन्ध लेकर बहती थी, उस धूलिको सब ओर बिखेर दिया। दौड़ते समय गायें और बछड़े मुड़-मुड़कर श्रीकृष्ण-को देख-देख जाते थे। दिनभर वृन्दावनमें जो खेल-कूद हुआ, ग्वाल-बाल सब उसीके सम्बन्धमें वार्तालाप करते चल रहे थे। जाते-जाते वे खेल भी कर रहे थे। परंतु वृन्दावनके पौधे, लताएँ, वृक्ष और झाड़ी सब दुखी हैं; क्योंकि प्यारे श्रीकृष्ण उनसे बिछुड़ रहे हैं। वे बड़े दुःखसे श्रीकृष्ण-को विदा देते हैं। उनके मनमें यह आशा अवश्य रहती है कि दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही हमें श्रीकृष्णके दर्शन होंगे। कुछ भी हो, श्रीकृष्ण अपनी लीलाओंसे उनके हृदयों-को लूटकर गोकुलको चले गये।

श्रीकृष्ण वेणु बजाते जाते थे। उनकी सुन्दर गति देखकर वृक्ष भी पुलकित हो उठे। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। उनका सौन्दर्य चेतन वस्तुको जड बना देता है और जडोंको चेतन। पशु-पक्षी और नर-नारी, जो चेतन हैं जड वस्तुके समान निश्चल होकर निर्निमेष उन्हींको देखते रहते हैं। वृक्ष जो जड हैं, उनको देखकर पुलकित हो जाते हैं। श्रीकृष्णके जाते समय वृन्दावनके हिरन और

मयूर कुछ दूरतक उनके पीछे-पीछे चलते थे। श्रीकृष्ण मुरली बजाते जाते थे।

कुछ पथिक मथुरापुरी जा रहे थे। बीचमें वे श्रीकृष्णके सौन्दर्यमें फँस गये। झुंड-की-झुंड गायें आती थीं। उन्हें देखकर वे एक ओर वृक्षके नीचे खड़े हो गये थे। उन्होंने देखा श्रीकृष्ण गायोंके मध्य आ रहे हैं। फिर उनकी मुरलीकी मीठी ध्वनि सुनायी पड़ी। मुरली-ध्वनि सुनते ही वे मथुरा जाना भूल गये। गायोंके साथ वे भी श्रीकृष्णके पीछे-पीछे चलने लगे। श्रीकृष्ण निरन्तर मुरली बजाते ही जाते थे। श्रीकृष्णके सौन्दर्य और मुरलीके सामने जब मुनिजन भी हार जाते हैं, तब इन बेचारे पथिकोंकी क्या गणना?

धीरे-धीरे श्रीकृष्ण और गोपबालक पथिकोंके साथ गोकुल आ पहुँचे। सुन्दर वीथी थी और दोनों ओर थे छोटे-छोटे गोप-गृह। प्रत्येक गृहके द्वारपर खड़ी गोपियाँ श्रीकृष्णकी प्रतीक्षा कर रही थीं। श्रीकृष्णको देखते ही वे अपार आनन्द और लज्जाके साथ उठ खड़ी हुईं। श्रीकृष्ण भी उन्हें अपनी कनखियोंसे देखते जा रहे थे। ऐसा लगता था कि श्रीकृष्ण उनके अपार प्रेम-प्रवाहमें तैरते हुए जा रहे हैं। यशोदाजी दिनभर इसी दुःखमें बैठी थीं कि मैंने अपने प्यारे बेटेको बिना छत्र और छटपल दिये घने जंगलमें भेज दिया। श्रीकृष्णको आते देख वह आनन्दके साथ दौड़ी आयीं। श्रीकृष्णको चूम लिया, आलिङ्गन किया, सिरपर सूँघा और अंदर ले चलीं।

पथिकगणोंने जो अबतक श्रीकृष्णके साथ-साथ चलते थे, देखा कि श्रीकृष्ण घरके अंदर चले गये। तब निराश होकर कहा—'अच्छा, तो अब हम चलें।' इतनेमें नन्दबाबा घरसे निकले और पथिकोंको जानेके लिये तैयार देखकर बोले—'आर्यवर! आपलोगोंको कहाँ जाना है? अब तो अँधेरा हो चला। अतः रातको यहाँ ठहरकर आप प्रातःकाल जा सकते हैं।' उन्होंने भी स्वीकार कर लिया और श्रीकृष्णको बुलाया नन्दबाबाने। 'आ गया' कहता हुआ वही बालक वहाँ आया जिसे देखकर पथिकगण अपना काम-धाम भूलकर उसके साथ हो लिये थे। उससे नन्दबाबाने कहा—'देख, ये सज्जन रातको यहीं ठहरेंगे, इनका खूब आदर-सत्कार करना।' श्रीकृष्णने भी अपने पिताके आज्ञानुसार उनका खूब सत्कार किया। पथिकोंके हर्षकी सीमा ही नहीं रही।

वृन्दावन-विहारी भगवान् श्रीकृष्णके लीलारूपी अमृत-समुद्रमें निमग्न मनुष्योंके सौभाग्यका कैसे वर्णन किया जा सकता है? श्रीकृष्णका विरह गोपियोंको क्षणमात्र भी दुस्सह था। परंतु जब वे उसके गुण-कीर्तनमें रत हो गयीं, वह नष्ट-सा हो गया।

> एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः।
> वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः॥
>
> (श्रीमद्भा० १०। २१। २०)

इस प्रकार गोप-बालिकाएँ प्रतिदिन उनकी लीलाओंको गा-गाकर तन्मय हो गयीं। उनके लिये श्रीकृष्ण ही धारक, पोषक तथा भाग्य थे—पीने योग्य जल, खाने योग्य अन्न और भोग्यभूत ताम्बूल सब वही थे। निरुपम श्रीकृष्ण-प्रेममें ये डूबी थीं और मोक्षको भी तुच्छ समझती थीं। गोपियोंके हृदयसे, जो श्रीकृष्णप्रेमरूपी अमृतधारासे नित्य आर्द्र थे, यह वेणुगीत उत्पन्न हुआ। यह गीत हमें श्रीकृष्णके मुरली-गीतका, जिसको वे परम-पुरुष वृन्दावनमें बजाते थे, स्मरण दिलाता है। हमने तो श्रीकृष्णका मुरली-गान नहीं सुना। परंतु गोपियोंका यह वेणुगीत एक रेडियो पेटिकाकी तरह उस सूक्ष्म मुरली-गानको पकड़कर हमें सुना देता है। स्वल्प मिठाईको सुरक्षित रखकर धीरे-धीरे खाकर दीर्घकालतक उसका आस्वादन लेना चाहिये। यही सुखप्रद है। यह वेणुगीत श्रीभागवतमें एक छोटे अध्यायमें ही समाप्त हो चुका। भले ही अध्याय समाप्त हो चुका हो, हम तो उसे कभी समाप्त होने नहीं देंगे। बार-बार उसको पढ़ते ही रहेंगे। अब तो यह वेणुगीत हमारे हाथमें पड़ गया। श्रीकृष्णका वेणुगीत सुनकर गोपियाँ श्रीकृष्णमय बनीं। गोपियोंका वेणुगीत सुनकर हम भी गोपीमय बनेंगे। श्रीकृष्णकी कृपा रहे और चाहिये ही क्या? किसी बातकी कमी नहीं। सब परिपूर्ण है।

प्रेम-प्रेम-प्रेम!

श्यामका स्वभाव—६

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

श्रीकृष्णचन्द्र शिशु ही तो है। इसे पकड़ना आता है; किंतु छोड़ना नहीं आता। बहुत शीघ्र पकड़ लेता है यह। कोई हाथ, कोई अँगुली इसके समीप कीजिये, इसके नन्हें कोमल, कमलारुण कर उसे पकड़नेको उत्सुक ही रहते हैं। यह तो समीप आनेवाले मुखकी नाकतक पकड़नेको हाथ बढ़ा देता है। एक बार इसकी पकड़में कुछ आ जाय बस ! आप फिर बल लगाते रहिये, उछलते-कूदते रहिये, नन्दलालने जो पकड़ा—बस पकड़ लिया। छोड़नेकी कला इसे नहीं आती और किसीने इसे यह कला सिखलायी नहीं। गोपके घर तो एक ही शिक्षा बाबा, मैया और दूसरे सब देनेवाले हैं—'अपना बनाकर त्यागना नहीं।'

कन्हाईको पूतनाने गोदमें उठाया था। स्तनोंमें हलाहल विष पोतकर आयी थी वह बालहत्यारिणी राक्षसी। शिशुओंका रक्त उसका प्रिय पेय था। श्यामसुन्दरके मुखमें भी उसने स्तनाग्र दे दिया। मोहनने वक्ष नन्हें करोंसे पकड़ लिया और दूध पीना आरम्भ किया। इसे लगा—'यह अच्छी धाय मिली।'

अब पूतना लाख चिल्लाये, हाथ-पैर पटके और भागे-दौड़े, क्या होनेवाला था ! मैया यशोदाके लालको तो वह धात्री लगी और उसने पकड़ लिया उसे। अब पूतना तो क्या, पूतनाके निर्मातामें भी शक्ति है कि कृष्णके हाथसे उसकी धायको छुड़ा लेगा ?

गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातुकी गति दई ताहि कृपालु जादवराइ॥

पूतना राक्षसी—रुकिये ! राक्षसी तो वह जब थी, तब थी। राक्षसीको तो मरना था और मर गयी वह। उसे तो नन्दबाबाके गोपोंने टुकड़े-टुकड़े काटकर भस्म कर दिया। पूतना श्यामकी धाय—जैसे ही श्रीकृष्णने उसके स्तनमें अपना नन्हा, कोमल मुख लगाया, वह कन्हाईकी धाय-माँ हो गयी। वह होना चाहती थी या नहीं, इसका प्रश्न कहाँ उठता है। मैया यशोदाका लाल कहाँ किसी विधानसभाका अध्यक्ष है कि वह लोगोंकी सम्मति लेता फिरे ? पूतनाने उसे दूध पिलाना चाहा, उसने दूध पीना प्रारम्भ किया तो पूतना धाय हो गयी और हुई सो हुई। श्रीकृष्णको छोड़ना जो नहीं आता। धात्री बना ली—सदाको बना ली वह तो।

'अहो बकी यं स्तनकालकूटं
जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजामि॥'

(श्रीमद्भागवत)

नित्य-लोक भेज दी पूतनाको और वहाँ भी धाय बनाकर। सदा-सदाको मोहनको दूध पिलानेका कार्य मिला उसे।

× × ×

वह आया था तृणावर्त व्रजमें। आया था बवंडर बनकर। वह और कुछ करता, उसने श्रीकृष्णको क्यों उठाया ? कोई श्यामको गोदमें उठा ले और असुर बना रहे, यह भी क्या बनने योग्य बात है ? उसने गोदमें उठाया और ले उड़ा। अब नन्हें शिशुको आप गोदमें लेकर ऊपर उछलेंगे तो वह आपके गलेमें चिपटेगा नहीं ?

'छोड़ ! छोड़ !' तृणावर्त मूर्ख ही तो था। नन्द-नन्दनने पकड़कर किसीको छोड़ा है या उसीको छोड़ देगा ? गला घुटता है, असुर मूर्च्छित, मृत होकर शिलापर गिरता है—यह सब तो होना था। श्रीकृष्णको गोदमें लेकर असुरत्वको तो मरना ही होगा। सूर्यका आवाहन भी करेंगे आप और रात्रिको बनाये भी रखना चाहेंगे तो यह आपकी बात चलेगी ?

एक तृणावर्तकी बात ही क्या—जो असुर व्रजमें आया, उसका असुरत्व मारा गया। मरता तो देह ही है। सुर-असुर देह ही होता है। आत्मा—अरे, व्रजमें आया, उसका आत्मा तो व्रजेन्द्रनन्दनका अपना हो गया। अपनाकर त्यागना यह गोपकुमारके शास्त्रमें नहीं है।

× × ×

श्रीकृष्ण नहीं देखता कि उसके समीप सुर आते हैं या असुर ! जो पकड़ने आता है, उसे पकड़ लेता है। पकड़ लेता है तो छोड़ना जानता नहीं। जिसे श्रीकृष्ण पकड़ लेगा,

वह न सुर रहेगा, न असुर। अग्निमें चन्दन डालो या बबूल—दोनों अग्नि बन जायँगे। जिसे श्रीकृष्ण पकड़ लेगा, वह श्रीकृष्णका अपना हो जायगा। उसका स्थान गोलोक।

आप कैसे हैं, इसे कोई पूछेगा नहीं। किसने कहा कि परम शुद्ध-चरित, विमलचित्त, योगी-ज्ञानी-धर्मात्माको ही श्रीकृष्ण अपनाता है? व्रजेन्द्रनन्दनको तो किसी हत्यारे असुरको भी पकड़ लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है। इस अहीरके बालकके लिये तो कोई अछूत है ही नहीं। आप इसे पकड़ना, इसे अपनाना चाहते हैं या नहीं, यह आप अपने हृदयसे पूछिये?

शीघ्रता मत कीजिये। श्रीकृष्णको आप पकड़ भी लें और असुरत्वको बचाये भी रहें, यह दोनों बात नहीं बनेगी। काम, क्रोध, लोभ, मोह—देहकी, परिवारकी संसारकी आसक्ति—यह असुरत्व है। पद-प्रतिष्ठा, धन-परिवार, सुख-स्वास्थ्य सब बना रहे और श्रीकृष्ण भी मिल जायँ—बड़ा झूठा लोभ है। नाम-रूपका मोह—देहकी आसक्ति ही असुरत्व है और इसे बनाये रखना है तो व्रजराजके कुमारसे दूर ही रहना चाहिये आपको।

मैं कहाँ कह रहा हूँ कि आप निर्दोष, निरासक्त होकर व्रजेन्द्रनन्दनके समीप आवें। इसे तो धूलि-कीचड़में लिपटे सखाओंको अंकमाल देनेका व्यसन है। आप जैसे हैं, वैसे ही इसके समीप आ सकते हैं। वैसे ही यह आपको पकड़ लेगा—पास आयेको पकड़ लेना इसका स्वभाव है। मैं कह यह रहा हूँ कि आप आयें तो प्रस्तुत होकर आयें कि श्रीकृष्णके पकड़ते ही असुरत्वकी मृत्यु निश्चित है।

व्रजमें आया प्रलम्ब। असुर था वह; किंतु गोपकुमार बनकर आया। उसने समीप आकर श्यामसे कहा—'मुझे भी अपने सखाओंमें मिलाओगे? साथ खेलने दोगे मुझे?'

'हाँ-हाँ! आओ!' श्रीकृष्णको अस्वीकार करना कहाँ आता है। वह तो सदा उत्सुक रहता है अपने सखाओंकी संख्या-वृद्धि करनेको। गोपोंका—अहीरोंका यह सनातन स्वभाव है कि अपने दलकी वृद्धिको वे सदा उत्सुक रहते हैं।

श्यामसुन्दरने प्रलम्बको पहिचाना नहीं? ऐसी आशंका तो किसी वक्र-मूर्खको ही होगी। कन्हाईके कमलदल-विशाल लोचनोंसे कुछ छिपा लेना ब्रह्माके भी वशके बाहरकी बात है; किंतु कोई अपने स्वभावका क्या करे? श्रीकृष्णका स्वभाव है—सबको स्वीकृति देना। अस्वीकार करना इसने सीखा नहीं। असुरको यह सखा न बनावे—असुरत्वको साथ लिये जीव इसके श्रीचरणोंकी शरण पानेकी आशा कैसे कर सकता है?

प्रलम्बको केवल सखा ही नहीं बनाया श्रीकृष्णने। उसे बहुत सम्मान दिया। उसे अपने दलमें रक्खा। उसकी सम्मतिके अनुसार उस दिन खेल प्रारम्भ हुए। प्रलम्ब असुर था और असुरत्वको स्वयं श्रीकृष्णसे डर लगता है। प्रलम्बको लगा—छोटा भाई दुर्धर्ष हो तो बड़ेको ही ले उड़ो।

बुद्धू था प्रलम्ब! क्षमा करें—असुर सदा मूर्ख होते हैं। असुरत्वकी सब वृत्तियाँ अज्ञानकी वृत्तियाँ हैं। बड़े-से-बड़ा विद्वान्, बुद्धिमान् जब लोभ, मोह, काम, क्रोध, आसक्तिके चक्करमें आता है, कम-से-कम उस सम्बन्धमें मूर्ख हो जाता है।

'जिमि कुपंथ पग देत खगेसा।
रहइ न बुधि बल तन लव लेसा॥'

प्रलम्ब असुर था। अतः मूर्खता तो अवश्यम्भावी थी उससे। कन्हाई तो कुछ हल्का भी होता, दाऊ कभी हल्के हुए हैं? बड़े भाईका गुरुत्व प्रलम्बको भारी पड़ने लगा और उसे अपना रूप—अपना असुर-रूप प्रकट करना पड़ा। फिर तो बलरामके मुष्टिप्रहारसे असुरकी कपाल-क्रिया हो गयी।

असुर मर गया। असुर ही मरता है श्रीकृष्णके समीप आकर। प्रलम्बको तो सखा बनाया था नन्दनन्दनने। वह तो सदाके लिये श्यामका सखा बन गया। श्रीकृष्णकी स्वीकृति तो शाश्वत स्वीकृति है।

× × ×

प्रलम्बके समान ही आया था व्योमासुर भी गोप-बालक बनकर। मायावियोंके परमाचार्य दानवश्रेष्ठ मयका पुत्र व्योम महामायावी। कंसका मित्र, अत्यन्त छल-चतुर और आया बड़ी निष्ठुरता लेकर। व्रजराजतनय यह सब देखा नहीं करता। व्योमको सखाओंमें मिल जानेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। गोपकुमार न सही वेश तो गोपकुमारका ही था। व्योमको भी वह सम्मान मिला जो किसी नवीन सखाका संकोच दूर करनेके लिये पहले दिन आवश्यक है। उस दिनकी क्रीड़ामें व्योमकी सम्मतिका सत्कार हुआ।

व्योम सखा बनकर सचमुच क्रीड़ा करने तो आया नहीं था। उसे तो अपनी क्रूरताकी आहुति देनी थी। वह गोपकुमारोंको एक-एक करके अन्धकारभरी गुफामें बंद करने लगा। गुफाद्वारपर भारी शिला रख दी उसने।

श्रीकृष्णके सखाओंको कोई बंदी रख सका है ! ब्रह्माजी भी एक बार बछड़े और गोप-बालकोंको उठा ले गये थे। वह शिक्षा मिली उन्हें कि पूरे जीवन नहीं भूलेगी। बार-बार कन्हाईके चरणोंपर उठते-गिरते रहे देरतक और मयूरमुकुटी बोला तक नहीं। गोपबालक, बछड़े सब लौटा दिये, बड़ी लम्बी स्तुति की, किंतु श्रीकृष्णने ब्रह्माको दो शब्द तो अनुग्रहके नहीं सुनाये !

सृष्टिकर्ता गोपकुमारोंको किसी दुर्भावसे नहीं ले गये थे। उन्हें केवल नन्दतनयकी कोई रुचिर लीला देखनी थी, किंतु व्योम तो बंदी बनाकर मार देना चाहता था सखाओंको। श्रीकृष्णको कदाचित् ही कभी क्रोध आता हो। नित्य सुप्रसन्न आनन्दकन्द श्रीव्रजचन्द्र, किंतु कोई उसके जनोंपर कुटिल दृष्टि उठावे········। भक्तापराध क्षमा करना भगवान्‌को नहीं आता और यह व्रजराजकुमार तो सर्वथा अपनोंका है।

श्रीकृष्णचन्द्रने बहुत असुर मारे हैं। धरापर यह आया ही भूभार हरण करने, किंतु इसकी भृकुटिपर बल नहीं पड़ा। क्रोध कभी नहीं आया इसे। चक्र उठे या न उठे, असुर-संहार सदा खेल-खेलमें किया इसने। जिसे भी मारा—क्षणमें मार दिया; किंतु व्योमने जो कुटिलता की—कन्हाईको रोष नहीं, क्रोध आया। क्रोध भी ऐसा कि श्याम जैसे अपना दयामय स्वभाव भूल ही गया।

'यह मेरे सखाओंपर हाथ उठाता है ! सखाओंको बंदी करके मारना चाहता है। एक गोपकुमारको जब व्योम ले जा रहा था, गुफाद्वारपर ही श्रीकृष्णने उसे पकड़ लिया। व्योम अपने दानवरूपमें आ गया—व्यर्थ ! असुर, दैत्य, दानव, राक्षसवेश कृष्णचन्द्रको भयभीत करेगा ? लात, थप्पड़, घूँसे—श्याम सचमुच असीम क्रोधमें था आज। इसने अंधाधुंध पीटना प्रारम्भ किया व्योमको। यह भी इसने नहीं देखा कि असुर-देह कब गिरा, कब मूर्च्छित हुआ, कितना तड़पा-चिल्लाया और कब मर गया। कन्हाई पीट रहा था और पीटता चला गया। व्योमकी हड्डियाँ पिस गयीं ! शरीर मांसका लोथड़ा बन गया और लोथड़ा स्थान-स्थानसे कट गया।

यह सब हुआ—असुरके साथ, असुर-देहके साथ तो यह सब हुआ, किंतु व्योमका क्या हुआ ? उसका होना भी क्या था। वह गोपकुमार बनकर श्रीकृष्णके समीप आया था। श्रीकृष्णने उसे सखाके रूपमें स्वीकार किया था। दानवदेह तो विनाशी था। विनष्ट हो गया। रूप वह अविनाशी जिसे श्यामने अपना बनाया। व्योमको वह अविनाशीरूप—गोपकुमार-रूप प्राप्त होना था। वही रूप उसका अपना रूप है और वह रूप तो उससे कन्हाई भी छीन नहीं सकता था।

× × ×

कोटि बिप्र बध लागइ जाही। आए सरन तजउँ नहिं ताही॥

ये अपने वचन हैं मर्यादापुरुषोत्तमके। कोई आये—सम्मुख आये तो सही। किंतु एक बात अवश्य श्रीरघुनाथने स्पष्ट कर दी है—

जौं पै दुष्ट हृदय सो होई। मोरें सनमुख आव कि सोई॥

दम्भी सम्मुख नहीं आ सकता। पापी, अपराधी—असुरतक समीप आ सकता है; किंतु दम्भी तो सम्मुख ही नहीं आ सकता। कोई सम्मुख ही न आवे तो दयाधाम क्या करें ?

'सकृत प्रनाम किएँ अपनाए।'

सम्मुख आकर कुछ साधन-भजन, पूजा-पाठ, जप-तप, योग-यज्ञ, सेवा-सत्कार; यह सब कुछ आवश्यक नहीं। एक बार मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और ये उदार-चक्र-चूड़ामणि दोनों भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लेनेको पहलेसे उत्सुक खड़े हैं।

मत करो प्रणाम ! सकृत् प्रणाम भी कौन माँगता है ? रावण, हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, कुम्भकर्ण, कंस—किसने प्रणाम किया था ?

'जनम तें सिसुपाल दिन प्रति देत गिन गिन गारि।
लियौ ताहि मिलाइ निज मैं कृपासिंधु मुरारि॥'

शिशुपाल तो प्रतिदिन प्रातः उठकर यही सन्ध्या-पूजा करता था कि श्रीकृष्णको गालियाँ दे। गालियाँ ही दे रहा था वह जब चक्रने उसका सिर काटा, किंतु शिशुपालको क्या मिला ? उसे श्रीकृष्णका सायुज्य प्राप्त हुआ।

प्रेमसे पूजा करने या द्वेषसे आघात करने, भावसे स्तुति करने या कुभावसे गाली देने—यह प्रश्न नहीं है कि आप

कन्हाईके समीप कैसे जाते हैं ? जो समीप आवे, उसे पकड़ लेगा और पकड़ लेगा तो तो फिर छोड़ेगा नहीं । श्रीकृष्णका यह स्वभाव है । इसके इस स्वभावको भूलिये मत ।

प्राणी भगवद्विमुख होता है मायाके चक्करमें आकर। श्यामको एक बार अपना हाथ पकड़ लेने दीजिये, सब चक्कर वह दूरसे ध्वस्त करता रहेगा । फिर आप कितना उछलो-कूदो, कितना भी हाथ छुड़ाना चाहो, कितना भी संसारमें दौड़नेका प्रयत्न करो—यह नटखट हाथ छोड़नेसे रहा और यह हाथ नहीं छोड़ेगा तो आपके पुकारने-बुलानेसे माया आपके समीप आवेगी ? प्रचण्ड प्रकाशके समीप खड़े होकर अन्धकारको पुकारोगे तो आपकी पुकार व्यर्थ ही तो होगी ।

'नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं ।'

डूबते वे हैं जो श्रीकृष्णके नहीं हैं । तैरना उन्हें पड़ता है, जो यशोदासुतके करोंमें अपना कर नहीं देते । कन्हाईको अपना हाथ पकड़ा दिया—अब भवसिन्धु है कहाँ जो कोई उसे तैरकर पार करेगा ? श्रीकृष्णके सम्मुख तो इसकी कोई छाया भी नहीं टिकती । कोई डूबना भी चाहे तो जल होगा तब न डूबेगा ? आपने जब कहा—'श्रीकृष्ण ! मैं तुम्हारा ।'

कन्हाई कहता है—'हाँ तुम मेरे ।'

हो गयी बात—समुद्र तो सूख चुका; क्योंकि कन्हाईके चरणोंको भी आर्द्र कर सके ऐसा समुद्र कभी न हुआ न होगा और जिसका हाथ वह पकड़ चुका, उसका हाथ छोड़ना तो इसे आता नहीं ।

श्रीबगलामुखी देवीकी उपासना

(प्रेषक—ब्रह्मचारी श्रीपागलानन्दजी उपनाम पं० श्रीयशदत्तजी शर्मा 'वानप्रस्थी, वैद्य)

[गताङ्क पृष्ठ १०४६ से आगे]

आधारे लिङ्गनाभौ प्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्के ।
वासान्ते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वराणां
हक्षौ तत्त्वार्थचिन्त्यं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि ॥

मूलाधार, लिङ्गके मूलस्थान—स्वाधिष्ठान चक्र, नाभि—मणिपूरचक्र, हृदय—अनाहतचक्र, तालुमूल—कण्ठ अर्थात् विशुद्धि चक्र, ललाट—भ्रूमध्य अर्थात् आज्ञाचक्रमें, जो क्रमशः चतुर्दल, षड्दल, दशदल, द्वादशदल, षोडशदल एवं द्विदल कमलसे अलंकृत हैं, क्रमशः व से स तक चार अक्षर, ब से ल तक छः अक्षर, ड से लेकर फ तक दस अक्षर, क से लेकर ठ तक बारह अक्षर, अ से लेकर अः तक सोलह स्वर तथा ह और क्ष—ये दो अक्षर विन्यस्त हैं। इस प्रकार इन सब दलोंमें वर्णरूपसे विराजमान तथा तत्त्वार्थरूपसे चिन्तनीय परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ।

कण्ठ अर्थात् विशुद्धि चक्रमें, जो जीवके अधिष्ठानभूत देहमें प्रदक्षिण क्रमसे स्थित है, षोडश दल हैं, उन दलोंमें भावनाद्वारा अ से लेकर अः तक सोलह स्वरोंका न्यास करे । हृदय अर्थात् अनाहत चक्रमें, जो द्वादश दलोंसे अलंकृत है, क से लेकर ठ तक के बारह अक्षरोंका न्यास करे । नाभिगत मणिपूरचक्रमें जहाँ दस दलोंका कमल है, ड से लेकर फ तकके दस अक्षरोंका न्यास करे । लिङ्गमूलगत स्वाधिष्ठानचक्रमें, जहाँ छः दल हैं, ब से लेकर ल तकके छः अक्षरोंका न्यास करे । फिर चार दलवाले मूलाधारचक्रमें, जिसके देवता श्रीगणेशजी हैं, व से लेकर स तकके चार अक्षरोंका न्यास करे । तत्पश्चात् भ्रूमध्यगत आज्ञाचक्रमें, जहाँ दो ही दल हैं और जहाँके देवता श्रीगुरु हैं, ह और क्ष—इन दो अक्षरोंका न्यास करे।

बहिर्मातृकान्यास

उपर्युक्त अन्तर्मातृकान्यासके पश्चात् बहिर्मातृका न्यास किया जाता है, जिसकी विधि इस प्रकार है। पहले निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर विनियोग करे—

विनियोग

ॐ अस्य बहिर्मातृकान्यासस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, मातृका सरस्वती देवता, हलो बीजानि, स्वराः शक्तयः, अव्यक्तं कीलकम्, श्रीब्रह्मविद्याङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास

ब्रह्मणे ऋषये नमः, शिरसि ।
गायत्रीच्छन्दसे नमः, मुखे ।
मातृकासरस्वत्यै नमः, हृदये ।
हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः, गुह्ये ।

स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः, पादयोः ।

अव्यक्तादकीलकाय नमः, सर्वाङ्गे ।

करन्यास

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा ।

ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट् ।

ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुम् ।

ॐ ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् ।

ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः—करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

इसी क्रमसे हृदयादिन्यास भी करे ।

ध्यान

सम्पूर्णेन्दुप्रभाभां सकललिपिमयीं लोलवक्रत्रिनेत्रां
शुक्लालंकारभूषां शशिमुकुटजटाजूटयुक्तां प्रसन्नाम् ।
पुस्तकस्त्रक्पूर्णकुम्भान् वरमपि दधतीं शुक्लपट्टाम्बराढ्यां
वाग्देवीं पद्मवक्त्रां स्तनभरनमितां चिन्तयेत् साधकेन्द्रः ॥

श्रेष्ठ साधकको वाग्देवीके स्वरूपका इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान है। सम्पूर्ण लिपियोंसे उनका शरीर घटित हुआ है। उनके चञ्चल और बाँके तीन नेत्र हैं, उन्हें अलंकृत करनेवाले आभूषण श्वेतवर्णके हैं। चन्द्राकार मुकुटसे युक्त जटाजूट उनके मस्तककी शोभा बढ़ाता है। वे सुप्रसन्न हैं। उनके चार हाथोंमें क्रमशः पुस्तक, माला, भरा कलश और वरमुद्रा सुशोभित हैं। उनके अङ्गोंपर श्वेत रंगका रेशमी वस्त्र चमक रहा है, उनका मुख प्रफुल्ल कमलके समान परम मनोहर है तथा वे स्तनोंके भारसे कुछ झुकी हुई जान पड़ती हैं।

ॐ अं नमः—मूर्ध्नि (इस वाक्यसे मूर्धाका स्पर्श करे)

ॐ आं नमः—मुखवृत्ते (मुखमण्डलका स्पर्श)

ॐ इं नमः—दक्षनेत्रे (दाहिने नेत्रका स्पर्श)

ॐ ईं नमः—वामनेत्रे (वाम नेत्रका स्पर्श)

ॐ उं नमः—दक्षकर्णे (दाहिने कर्णका स्पर्श)

ॐ ऊं नमः—वामकर्णे (बायें कानका स्पर्श)

ॐ ऋं नमः—दक्षनासायाम् (दाहिनी नाकका स्पर्श)

ॐ ॠं नमः—वामनासायाम् (वाम नाकका स्पर्श)

ॐ लृं नमः—दक्षगण्डे (दाहिने गालका स्पर्श)

ॐ ॡं नमः—वामगण्डे (बायें गालका स्पर्श)

ॐ एं नमः—ऊर्ध्वौष्ठे (ऊपरके ओठका स्पर्श)

ॐ ऐं नमः—अधरौष्ठे (नीचेके ओठका स्पर्श)

ॐ ओं नमः—ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ (ऊपरकी दन्तपंक्तिका स्पर्श)

ॐ औं नमः—अधोदन्तपङ्क्तौ (नीचेकी दन्तपंक्तिका स्पर्श)

ॐ अं नमः—मस्तके (मस्तकका स्पर्श)

ॐ अः नमः—मुखे (मुखका स्पर्श)

ॐ कं नमः—दक्षहस्तमूले । (दाहिनी भुजाके मूल भागका स्पर्श)

ॐ खं नमः—कूर्परे (दाहिनी कुहनीका स्पर्श)

ॐ गं नमः—मणिबन्धे (दाहिनी कलाईका स्पर्श)

ॐ घं नमः—अङ्गुलिमूले (दाहिने हाथकी अंगुलियोंके मूल भागका स्पर्श)

ॐ ङं नमः—अङ्गुल्यग्रे (दाहिने हाथकी अंगुलियोंके अग्रभागका स्पर्श)

ॐ चं नमः—वामहस्तमूले (बायीं भुजाके मूल भागका स्पर्श)

ॐ छं नमः—कूर्परे (बायीं कुहनीका स्पर्श)

ॐ जं नमः—मणिबन्धे (बायीं कलाईका स्पर्श)

ॐ झं नमः—अङ्गुलिमूले (बायें हाथकी अंगुलियोंके मूल भागका स्पर्श)

ॐ ञं नमः—अङ्गुल्यग्रे (बायें हाथकी अंगुलियोंके अग्र भागका स्पर्श)

ॐ टं नमः—दक्षपादमूले (दाहिने पैरके मूलभागका स्पर्श)

ॐ ठं नमः—जानुनि (दाहिने घुटनेका स्पर्श)

ॐ डं नमः—गुल्फे (दाहिनी घुट्टीका स्पर्श)

ॐ ढं नमः—अङ्गुलिमूले (दाहिने पैरकी अंगुलियोंके मूल भागका स्पर्श)

ॐ णं नमः—अङ्गुल्यग्रे (दाहिने पैरकी अंगुलियोंके अग्रभागका स्पर्श)

ॐ तं नमः—वामपादमूले (बायें पैरके मूल भागका स्पर्श)

ॐ थं नमः—जानुनि (बायीं घुटनीका स्पर्श)

ॐ दं नमः—गुल्फे (बायीं घुट्टीका स्पर्श)

ॐ धं नमः—अङ्गुलिमूले (बायीं अंगुलियोंके मूल भागका स्पर्श)

ॐ नं नमः—अङ्गुल्यग्रे (बायीं अंगुलियोंके अग्रभागका स्पर्श)

ॐ पं नमः—दक्षकक्ष्यां (दाहिने कटि भागका स्पर्श)

ॐ फं नमः—वामकक्ष्याम् (बायें कटिभागका स्पर्श)

ॐ बं नमः—पृष्ठे (पीठका स्पर्श)

ॐ भं नमः नाभौ (नाभिका स्पर्श)

ॐ मं नमः—जठरे (पेटका स्पर्श)

ॐ यं त्वगात्मने नमः—हृदये (हृदयका स्पर्श)

ॐ रं असृगात्मने नमः—दक्षांसे (दाहिने कंधेका स्पर्श)

ॐ लं मांसात्मने नमः—वामांसे (बायें कंधेका स्पर्श)

ॐ वं मेदात्मने नमः—ककुदि (ककुद् अर्थात् ग्रीवाके नीचे और पीठके ऊपरके भागका स्पर्श)

ॐ शं अस्थ्यात्मने नमः—हृदयादिदक्षहस्तान्तम् (हृदयसे लेकर दाहिने हाथके अन्ततकके भागका स्पर्श)

ॐ षं मज्जात्मने नमः—हृदयादिवामहस्तान्तम् (हृदयसे लेकर बायें हाथके अन्ततकके भागका व्यापक स्पर्श)

ॐ सं शुक्लात्मने नमः—दक्षपादान्तम् (हृदयसे लेकर दायें पैरके अन्ततकके भागका व्यापक स्पर्श)

ॐ हं जीवात्मने नमः—हृदयादिवामपादान्तम् (हृदयसे लेकर बायें पैरके अन्ततकके भागका व्यापक स्पर्श)

ॐ ळं प्राणात्मने नमः—हृदयादिनाभ्यन्तम् (हृदयसे लेकर नाभिके अन्ततकका व्यापक स्पर्श)

ॐ क्षं परमात्मने नमः—हृदयादिमुखान्तं स्पृशेत् (हृदयसे लेकर मुखके अन्तिमभागतकका स्पर्श)

श्रीकण्ठादिमातृकान्यास

विनियोग

ॐ अस्य श्रीकण्ठादिमातृकान्यासमन्त्रस्य श्रीदक्षिणामूर्तिर्ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, अर्धनारीश्वरो देवता, हलो बीजानि, स्वराः शक्तयः, अव्यक्तं कीलकम्, श्रीब्रह्मास्त्रविद्याङ्गत्वेन श्रीकण्ठादिन्यासमहं करिष्ये ।

ऋष्यादिन्यास

श्रीदाक्षिणामूर्तये ऋषये नमः, शिरसि ।

गायत्रीच्छन्दसे नमः, मुखे ।

श्रीअर्धनारीश्वराय नमः, हृदये ।

हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः, गुह्ये ।

स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः, पादयोः ।

अव्यक्ताय कीलकाय नमः, सर्वाङ्गे ॥ इति ॥

करन्यास

क्षां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

क्षीं तर्जनीभ्यां नमः ।

क्षूं मध्यमाभ्यां नमः ।

क्षैं अनामिकाभ्यां नमः ।

क्षौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।

क्षः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयाद्यङ्गन्यास

क्षां हृदयाय नमः ।

क्षीं शिरसे स्वाहा ।

क्षूं शिखायै वषट् ।

क्षैं कवचाय हुम् ।

क्षौं नेत्रत्रयाय वौषट् ।

क्षः अस्त्राय फट् ।

ध्यान

बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां
पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः ।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र-
मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि ॥

मैं भगवान् शंकरके अर्धनारीश्वररूपका निरन्तर शरण लेता हूँ । उस स्वरूपकी अङ्गकान्ति बन्धूक पुष्प एवं सुवर्णके समान रक्त-पीतमिश्रित है । उसने अपने हाथोंमें सुन्दर अक्षमाला, पाश, अंकुश तथा वरद मुद्रा ले रक्खी हैं और शशिखण्डको अपने मस्तकका आभूषण बना रक्खा है तथा उसके तीन नेत्र सुशोभित होते हैं ।

इस प्रकार ध्यान करके निम्नाङ्कित श्रीकण्ठादि मन्त्रोंके पाठपूर्वक पूर्वोक्त मातृकान्यासके स्थानोंपर हाथसे स्पर्श करे । यथा—

ॐ अं श्रीकण्ठेशपूर्णोदरीभ्यां नमः—(मूर्ध्नि)

ॐ आं अनन्तेशविरजाभ्यां नमः—(मुखवृत्ते)

ॐ इं सूक्ष्मेशसल्लीभ्यां नमः—(दक्षनेत्रे)

ॐ ईं त्रिमूर्तीशलोलाक्षीभ्यां नमः—(वामनेत्रे)

ॐ उं अमरेश्वरेशवर्तुलाक्षीभ्यां नमः—(दक्षकर्णे)

ॐ ऊं अर्घीशदीर्घकोशाक्षीभ्यां नमः—(वामकर्णे)

ॐ ऋं भारभूतेशसुदीर्घमुखीभ्यां नमः (दक्षनासायाम्)

ॐ ॠं अटवीशगोमुखीभ्यां नमः (वामनासायाम्)

ॐ लृं स्थाण्वीशदीर्घजिह्वाभ्यां नमः (दक्षगण्डे)

ॐ ॡं हरेशकुण्डोदरीभ्यां नमः (वामगण्डे)

ॐ एं झिण्टीशोर्ध्वकेशीभ्यां नमः (ऊर्ध्वोष्ठे)

ॐ ऐं भौतिकेशविकृतमुखीभ्यां नम. (अधरोष्ठे)

ॐ ओं सद्योजातेशज्वालामुखीभ्यां नमः (ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ)

ॐ औं अनुग्रहेशोल्कामुखीभ्यां नमः (अधोदन्तपङ्क्तौ)
ॐ अं अक्रूरेशसुश्रीमुखीभ्यां नमः (मस्तके)
ॐ अः महासेनेशविद्यामुखीभ्यां नमः (मुखे)
ॐ कं क्रोधीशमहाकालीभ्यां नमः (दक्ष हस्तमूले)
ॐ खं चण्डेशसरस्वतीभ्यां नमः (कूर्परे)
ॐ गं पञ्चान्तकेशगौरीभ्यां नमः (मणिबन्धे)
ॐ घं शिवोत्तमेशत्रैलोक्यविद्याभ्यां नमः (अङ्गुलिमूले)
ॐ ङं एकरुद्रेशमन्त्रशक्तिभ्यां नमः (अङ्गुल्यग्रे)
ॐ चं कूर्मेशात्मशक्तिभ्यां नमः (वामहस्तमूले)
ॐ छं एकरुद्रेशमन्त्रशक्तिभ्यां नमः (कूर्परे)
ॐ जं चतुराननेशलम्बोदरीभ्यां नमः (मणिबन्धे)
ॐ झं अजेशद्राविणीभ्यां नमः (अङ्गुलिमूले)
ॐ ञं सर्वेशनागरीभ्यां नमः (अङ्गुल्यग्रे)
ॐ टं सोमेशखेचरीभ्यां नमः (दक्षपादमूले)
ॐ ठं लाङ्गलीशमञ्जरीभ्यां नमः (जानुनि)
ॐ डं दारुकेशरूपिणीभ्यां नमः (गुल्फे)
ॐ ढं अर्धनारीशधरिणीभ्यां नमः (पादाङ्गुलिमूले)
ॐ णं उमाकान्तेशकाकोदरीभ्यां नमः (अङ्गुल्यग्रे)
ॐ तं आषाढीशपूतनाभ्यां नमः (वामपादमूले)
ॐ थं देशीशभद्रकालीभ्यां नमः (जानुनि)
ॐ दं अत्रीशयोगिनीभ्यां नमः (गुल्फे)
ॐ धं मीनेशशङ्खिनीभ्यां नमः (अङ्गुलिमूले)
ॐ नं मेरवेशगर्जिनीभ्यां नमः (अङ्गुल्यग्रे)
ॐ पं लोहितेशकालरात्रिभ्यां नमः (दक्षकक्ष्याम्)
ॐ फं शङ्खेशकुण्डलिनीभ्यां नमः (वामकक्ष्याम्)
ॐ बं छगलेशकपर्दिनीभ्यां नमः (पृष्ठे)
ॐ भं छिरंडेशवज्रिणीभ्यां नमः (नाभौ)
ॐ मं महाकालेशजयाभ्यां नमः (जठरे)
ॐ यं त्वगात्मकरालीशसुश्रीमुखीभ्यां नमः (हृदये)
ॐ रं असृगात्मभ्यां भुजङ्गेशरेवतीभ्यां नमः (दक्षांसे)
ॐ लं मांसात्मभ्यां पिनाकीशमाधवीभ्यां नमः । (वामांसे)
ॐ वं मेदात्मभ्यां खड्गीशवारुणीभ्यां नमः । (ककुदि)
ॐ शं अस्थ्यात्मभ्यां वकेशवायवीभ्यां नमः
(हृदयादिदक्षहस्तान्तम्)
ॐ षं मज्जात्मभ्यां श्वेतेशरक्षोविदारिणीभ्यां नमः
(हृदयादिवामहस्तान्तम्)
ॐ सं शुक्रात्मभ्यां भृग्वीशसहजाभ्यां नमः
(दक्षपादान्तम्)
ॐ हं जीवात्मभ्यां नकुलीशलक्ष्मीभ्यां नमः
(हृदादिवामपादान्तम्)
ॐ लं प्राणात्मभ्यां शिवेशव्यापिनीभ्यां नमः
(हृदयादिनाभ्यन्तम्)
ॐ क्षं परमात्मभ्यां संवर्तकेशाभ्यां नमः
(हृदयादिमुखान्तं स्पृशेत्)

इस प्रकार श्रीकण्ठादिमातृकान्यास कर लेनेके पश्चात् बगला मातृकाका न्यास करना चाहिये ।

बगलामातृका-न्यास

विनियोग

ॐ अस्य श्रीबगलामुखीमहामन्त्रस्य नारद ऋषिः, बृहतीच्छन्दः, श्रीबगलामुखी देवता, ह्लीं बीजम्, स्वाहा शक्तिः, मम सकलकामनासिद्ध्यर्थे बगलामातृकान्यासे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास

नारदऋषये नमः शिरसि ॥ बृहतीच्छन्दसे नमः मुखे ॥ श्रीबगलामुखीदेवतायै नमः हृदि ॥ ह्लीं बीजाय नमः गुह्ये ॥ स्वाहाशक्तये नमः पादयोः ।

करन्यास

'ॐ ह्लीं' अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । 'बगलामुखी' तर्जनीभ्यां नमः । 'सर्वदुष्टानां' मध्यमाभ्यां नमः । 'वाचं मुखं पदं स्तम्भय' अनामिकाभ्यां नमः । 'जिह्वां कीलय, कीलय' कनिष्ठिकाभ्यां नमः । 'बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा' करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयाद्यङ्गन्यास

'ॐ ह्लीं' हृदयाय नमः । 'बगलामुखी' शिरसे स्वाहा । 'सर्वदुष्टानां' शिखायै वषट् । 'वाचं मुखं पदं स्तम्भय' कवचाय हुम् । 'जिह्वां कीलय कीलय' नेत्रत्रयाय वौषट् । 'बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा' अस्त्राय फट् ।

मातृकान्यास

ॐ अं ह्लीं नमः, मूर्ध्नि ।
ॐ आं ह्लीं नमः, मुखवृत्ते ।
ॐ इं ह्लीं नमः, दक्षनेत्रे ।
ॐ ईं ह्लीं नमः, वामनेत्रे ।
ॐ उं ह्लीं नमः, दक्षकर्णे ।
ॐ ऊं ह्लीं नमः, वामकर्णे ।
ॐ ऋं ह्लीं नमः—दक्षनासायाम् ।

ॐ ऋं ह्लीं नमः, वामनासायाम् ।
ॐ लृं ह्लीं नमः, दक्षगण्डे ।
ॐ लॄं ह्लीं नमः, वामगण्डे ।
ॐ एं ह्लीं नमः, ऊर्ध्वोष्ठे ।
ॐ ऐं ह्लीं नमः, अधरोष्ठे ।
ॐ ओं ह्लीं नमः, ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ ।
ॐ औं ह्लीं नमः, अधोदन्तपङ्क्तौ ।
ॐ अं ह्लीं नमः, मस्तके ।
ॐ अः ह्लीं नमः, मुखे ।
ॐ कं ह्लीं नमः, दक्षबाहुमूले ।
ॐ खं ह्लीं नमः, कूर्परे ।
ॐ गं ह्लीं नमः, मणिबन्धे ।
ॐ घं ह्लीं नमः, अङ्गुलिमूले ।
ॐ ङं ह्लीं नमः, अङ्गुल्यग्रेषु ।
ॐ चं ह्लीं नमः, वामबाहुमूले ।
ॐ छं ह्लीं नमः, कूर्परे ।
ॐ जं ह्लीं नमः, मणिबन्धे ।
ॐ झं ह्लीं नमः, अङ्गुलिमूले ।
ॐ ञं ह्लीं नमः, अङ्गुल्यग्रेषु ।
ॐ टं ह्लीं नमः, दक्षपादमूले ।
ॐ ठं ह्लीं नमः, जानुनि ।
ॐ डं ह्लीं नमः, गुल्फे ।
ॐ ढं ह्लीं नमः, पादाङ्गुलिमूले ।
ॐ णं ह्लीं नमः, अङ्गुल्यग्रेषु ।
ॐ तं ह्लीं नमः, वामपादमूले ।
ॐ थं ह्लीं नमः, जानुनि ।
ॐ दं ह्लीं नमः, गुल्फे ।
ॐ धं ह्लीं नमः, पादाङ्गुलीमूले ।
ॐ नं ह्लीं नमः, अङ्गुल्यग्रेषु ।
ॐ पं ह्लीं नमः, दक्षकक्ष्याम् ।
ॐ फं ह्लीं नमः, वामकक्ष्याम् ।
ॐ बं ह्लीं नमः, पृष्ठे ।
ॐ भं ह्लीं नमः, नाभौ ।
ॐ मं ह्लीं नमः, जठरे ।
ॐ यं ह्लीं त्वगात्मने नमः, हृदि ।
ॐ रं ह्लीं असृगात्मने नमः, दक्षांसे ।
ॐ लं ह्लीं मांसात्मने नमः, वामांसे ।
ॐ वं ह्लीं मेदात्मने नमः, ककुदि ।
ॐ शं ह्लीं अस्थ्यात्मने नमः, हृदयादिदक्षहस्तान्तम् ।
ॐ षं ह्लीं मज्जात्मने नमः, हृदयादिवामहस्तान्तम् ।
ॐ सं ह्लीं शुक्रात्मने नमः, हृदयादिदक्षपादान्तम् ।
ॐ हं ह्लीं जीवात्मने नमः, हृदयादिवामपादान्तम् ।
ॐ ळं ह्लीं प्राणात्मने नमः, हृदयादिनाभ्यन्तम् ।
ॐ क्षं ह्लीं परमात्मने नमः, हृदयादिमुखान्तं स्पृशेत् ।

इसके पश्चात् महती पद्धतियोंके अनुसार गणेशन्यास, ग्रहन्यास, नक्षत्रन्यास, योगिनीन्यास, राशिन्यास, पूर्वषोढान्यास एवं लघुषोढान्यास करने चाहिये । तदनन्तर पञ्जरन्यास या महाषोढान्यास करे । पञ्जरन्यासकी विधि इस प्रकार है—विभिन्न रूपोंमें बगलामुखी देवीका चिन्तन करते हुए दसों दिशाओंमें उनकी भावना करे और उनसे सब दिशाओंमें अपनी रक्षाके लिये प्रार्थना करे । निम्नाङ्कित श्लोकोंके अर्थानुसन्धानपूर्वक पाठसे पञ्जरन्यासकी क्रिया सम्पन्न हो जाती है । यह पञ्जरन्यास मन्त्रकी सिद्धिमें परम सहायक है ।

पञ्जरन्यास

वक्ष्येऽहं पञ्जरन्यासं मन्त्रसिद्धिकरं नृणाम् ।
ॐ बगला पूर्वतो रक्षेदाग्नेय्यां च गदाधरी ॥
पीताम्बरा दक्षिणे च स्तम्भिनी चैव नैर्ऋते ।
जिह्वां कीलिन्यधो रक्षेत्पश्चिमे सर्वदा मम ॥
वायव्ये च सुखोन्मत्ता कौबेर्यां च त्रिशूलिनी ।
ब्रह्मास्त्रदेवता पातु ऐशान्ये सततं च माम् ॥
रक्षेयुः संततं मां तु अधस्तात्सर्वमातरः ।
ऊर्ध्वे रक्षेन्महादेवी जिह्वां स्तम्भनकारिणी ॥
एवं दश दिशो रक्षेद्बगला सर्व्वसिद्धिदा ॥

तत्त्वन्यास

इसके बाद तत्त्वन्यास करे । बगलामुखीके मूलमन्त्रका उच्चारण करके निम्नाङ्कित वाक्योंको पढ़ते हुए क्रमशः हृदयमें, भ्रूमध्यमें, ब्रह्मरन्ध्रमें तथा सम्पूर्ण अङ्गोंमें न्यास करे ।

ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय । जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा—आत्मतत्त्वव्यापिनीं श्रीबगलामुखीपादुकां पूजयामि नमः—इति हृदये ।

ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा—विद्यातत्त्वव्यापिनीं श्रीबगलामुखीपादुकां पूजयामि नमः—इति भ्रुवोर्मध्ये ।

ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय

जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा—शिवतत्त्वव्यापिनीं श्रीबगलामुखीपादुकां पूजयामि नमः—इति ब्रह्मरन्ध्रे ।

ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा—सर्वतत्त्वव्यापिनीं श्रीबगलामुखीपादुकां पूजयामि नमः—इति सर्वाङ्गे ।

तदनन्तर मूलमन्त्रसे सात बार व्यापकन्यास करके पीठन्यास करे । सिरसे लेकर पैरतकके सम्पूर्ण अङ्गोंपर दोनों हाथ फेरना व्यापकन्यास कहलाता है । पीठन्यासकी विधि निम्नाङ्कित है—

योगपीठन्यास

आराध्यदेवी माता बगलामुखीका योगपीठ अर्थात् अधिष्ठानभूत आसन अपना यह शरीर ही है । ऐसा चिन्तन करके शरीरगत तत्तत्स्थानोंपर निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे न्यास करे । यथा—

ॐ मं मण्डूकाय नमः—इति मूलाधारे (मूलाधार चक्रका स्पर्श करे)

ॐ कं कालाग्निरुद्राय नमः—इति स्वाधिष्ठाने (स्वाधिष्ठान चक्रका स्पर्श करे)

ॐ मं मूलप्रकृत्यै नमः—इति मणिपूरके (मणिपूरक चक्रका स्पर्श)

ॐ आम् आधारशक्त्यै नमः—इत्यनाहते (अनाहत चक्रका स्पर्श)

इस प्रकार मूलाधार आदि चक्रोंमें मण्डूक आदिका भावनात्मक न्यास करके हृदयमें कूर्म, अनन्त एवं वराहदेवका चिन्तन करे । यथा—ॐ कूं कूर्माय नमः । ॐ अम् अनन्ताय नमः । ॐ वं वराहाय नमः । इसके बाद वराह भगवान्‌की दंष्ट्राके अग्रभागमें पृथिवीका चिन्तन एवं नमस्कार करे । यथा—ॐ पं पृथिव्यै नमः । (क्रमशः)

श्रीकृष्णभक्त अंग्रेज डा० डेविडसन

[एक महान् श्रीकृष्णभक्त अंग्रेजके जीवनकी आश्चर्यजनक बिल्कुल सत्य घटना]

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुवा)

माननीय पं० श्रीराजनारायण शर्माजी बड़े ही मिलनसार आस्तिक सज्जन हैं । एक दिन आप हमारे स्थानपर पधारे थे । आपने सुप्रसिद्ध श्रीकृष्णभक्त अंग्रेज डा० डेविडसन साहबके जीवनकी ऐसी-ऐसी विलक्षण सत्य घटनाएँ सुनायी थीं कि जिन्हें सुनकर सभी आश्चर्यचकित रह गये थे और गद्‌गद हो गये थे । यह स्मरण रहे कि श्रीकृष्णभक्त डा० डेविडसन साहबका आपके घरवालोंसे बड़े प्रेमका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था । शर्माजीकी सुनायी कुछ सत्य घटनाएँ इस प्रकार हैं—

लगभग सन् १९१८ की बात है कि बाबूगढ़ जिला मेरठमें एक अंग्रेज डा० डेविडसन साहब मेडिकल अफसर होकर आये थे । डा० डेविडसन साहब बड़े ही मिलनसार, सज्जन और सात्त्विक विचारोंके और श्रीकृष्ण-भक्त पुरुष थे । उनके सम्बन्धमें यह बात बड़ी प्रसिद्ध थी कि उन्होंने अपनी श्रीकृष्ण-भक्ति, श्रीकृष्णनाम-जप और श्रीकृष्ण-प्रार्थनाके बलपर अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त कर ली हैं । उनका प्राचीन ऋषियोंकी आत्माओंसे सम्बन्ध स्थापित हो गया है, और वे उनसे बातें करते हैं और उनमें इतना ज्ञान आ गया है कि वे घर बैठे सब जगहकी बातें जान लेते हैं । डा० डेविडसनके कमरेमें मनुष्यके बराबर आकारवाली एक बहुत ही सुन्दर भगवान् श्रीकृष्णकी प्रतिमा थी और वे भगवान् श्रीकृष्णकी उस प्रतिमाके सामने खड़े होकर प्रेममें विभोर हो नृत्य करते हुए श्रीकृष्णकीर्तन किया करते थे । श्रीकृष्ण-कीर्तन करते हुए उनकी कीर्तनमें इतनी तन्मयता होती थी कि वे अपने शरीरतककी भी सुध-बुध खो बैठते थे ।

साहबको भगवान् श्रीकृष्णके सामने नृत्य करते कब कैसे देखा गया ?

हमारे पूज्य पिताजीका शुभ नाम था वैद्यराज पं० श्रीमुकुन्दलालजी शर्मा । वे हापुड़में रहा करते थे । उनका श्रीकृष्णभक्त डा० डेविडसनसे बड़ा प्रेम था । यहाँतक कि कभी डा० डेविडसन साहब हापुड़ मेरे पिताजीके पास चले आते थे और कभी, जब जीमें आता मेरे पिताजी भी बाबूगढ़ पहुँच जाते थे । इस प्रकार एक दूसरेके पास बराबर आते-जाते रहते थे ।

एक दिन मेरे पिताजी अपने कुछ मित्रोंको साथ लेकर डा० डेविडसन साहबसे मिलनेके लिये बाबूगढ़ गये, सबने जाकर क्या देखा कि साहबका कमरा अंदरसे बिल्कुल बंद है और कुछ-कुछ गानेकी-सी आवाज सुनायी पड़ रही है। पिताजी कमरेके पीछेकी ओर गये और उधरके कमरेमें पीछेकी ओरके जँगलेसे झाँककर देखा तो उन्हें उस कमरेमें एक मनुष्यके बराबर आकारकी भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी सुन्दर मनोहर प्रतिमा स्थापित दिखायी दी। डा० डेविडसन साहब भगवान् श्रीकृष्णकी उस मूर्तिके सामने खड़े होकर नृत्य करते हुए श्रीकृष्ण-कीर्तन कर रहे थे। इन्होंने समझा कि 'अंग्रेज लोग शराब पीते ही हैं, आज डा० डेविडसनने शायद ज्यादा शराब पी ली है और उसीके नशेमें नाच-कूद रहे हैं। इसलिये अब इनसे मिलना और बातें करना उचित नहीं है।' ऐसा अपने मनमें विचारकर वे लोग वहाँसे चुपचाप चल दिये।

साहबको श्रीकृष्णनाम-जप, श्रीकृष्ण-नामकीर्तन और श्रीकृष्ण-प्रार्थनाके द्वारा दूसरोंके मनकी बात जान लेनेकी अद्भुत शक्ति प्राप्त हो चुकी थी। इसलिये वे इनके मनकी बात भलीभाँति जान गये। और ये लोग कुछ ही दूर गये होंगे कि साहबने झटसे अपना कमरा खोलकर चपरासीको संकेत करके कहा कि 'सामने जानेवाले उन आदमियोंको हमारे पास बुला लाओ।' चपरासीके बुलानेपर पं० श्रीमुकुन्दलाल शर्माजी अपने साथियोंके साथ पुनः वापस लौट आये। डा० डेविडसन साहबने उनसे पूछा कि 'बताइये आपने क्या देखा है और क्या समझा है?'

इसपर मेरे पिता मुकुन्दलालजीने कहा कि 'साहब! हमने कुछ नहीं समझा है।'

डेविडसन साहबने कहा कि 'शायद आपलोगोंको यह भ्रम हुआ है कि आज साहब शराब अधिक पी गये हैं और शराबके नशेमें ही झूम-नाच रहे हैं, पर ऐसी बात नहीं है, यह आपका भ्रम ही है।'

साहबके मुखसे अपने मनकी बात सुनकर सभी दंग रह गये और पिताजीने कहा—'जी हाँ, साहब! वास्तवमें हमारे मनमें यही बात आयी थी कि जो आप कह रहे हैं। पर आपको हमारे मनकी बात मालूम कैसे हो गयी?'

साहबने कहा कि 'अच्छा, अब आप सब मेरे इस कमरेमें आइये।' साहब सबको अपने साथ कमरेमें ले गये और अंदर ले जाकर साहबने दिखाया कि एक मनुष्यके कद्के बराबर संगमरमरकी बड़ी ही सुन्दर भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य प्रतिमा वहाँ विराजमान है और वह बहुत ही सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे, पुष्पहारोंसे सुसज्जित है। फिर साहबने कहा—'शर्माजी! मैं इन्हीं अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्णके सामने खड़ा होकर नृत्य-कीर्तनकर अपने प्रभु भगवान् श्रीकृष्णको रिझा रहा था और इस श्रीकृष्ण-प्रेमकी शराबके नशेमें झूम रहा था और कोई बात नहीं थी।'

एक विदेशी और विधर्मी अंग्रेजके कमरेमें भगवान् श्रीकृष्णकी सुन्दर प्रतिमाको देखकर और उनके मुखसे श्रीकृष्णभक्तिकी सुन्दर मीठी रसीली बातें सुनकर सभी आश्चर्यचकित रह गये और सभीका हृदय गद्‌गद हो गया और अपनेको कृतकृत्य मानने लगे।

श्रीकृष्णभक्त अंग्रेज डा० डेविडसन साहब मांस-मदिराका खाना-पीना तो दूर रहा, स्पर्श करना भी बड़ा घोर पाप मानते थे। आप एक परम वैष्णव बन गये थे और वेदोंमें तथा हिंदूधर्मके अन्य ग्रन्थोंमें आपकी बड़ी आस्था थी और आप हिंदू सनातनधर्मको ही सर्वश्रेष्ठ और एकमात्र पूर्ण धर्म मानते थे। आपको श्रीकृष्ण-भक्तिका यह अद्भुत चस्का सर्वप्रथम अफ्रीकामें लगा था और कुछ दिनोंके पश्चात् परम पवित्र श्रीमथुरापुरीमें आनेपर तो आपको श्रीकृष्णभक्तिका पूरा-पूरा रंग चढ़ गया। जबतक आप जीवित रहे, श्रीकृष्ण-भक्तिमें तल्लीन रहे और नित्यप्रति अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्तिके सामने खड़े होकर नृत्य-कीर्तन करते रहे।

श्रीकृष्णभक्तिके द्वारा अलौकिक सिद्धिका अद्भुत चमत्कार क्या देखा?

भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्तिके सामने नृत्य-कीर्तन करनेसे और उनकी भक्ति करनेसे आपको कई प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो गयी थीं, जिनमें एक बिल्कुल सत्य घटना यहाँपर दी जा रही है जो इस प्रकार है—

एक दिनकी बात है कि डा० डेविडसन साहब अपने स्थान बाबूगढ़से हापुड़ हमारे घरपर पधारे और आकर हमारे बड़े भ्राता पं० श्रीराजबिहारीलाल शर्माजीसे बोले—'बेटा राजबिहारीलाल! आज तुम्हें हमारे साथ लखनऊ चलना है, इसलिये तुम झटसे तैयार हो जाओ।'

पं० राजबिहारीलाल शर्माजीने जब आपसे लखनऊ चलनेका कारण पूछा तो डा० डेविडसन साहबने कहा कि 'बेटा ! चलनेका कारण न पूछो, बस, हमारे साथ चले चलो ।' शर्माजीने चलना सहर्ष स्वीकार कर लिया ।

डा० डेविडसन साहब और पं० राजबिहारीलाल शर्माजी दोनों संध्याकी ट्रेनसे लखनऊके लिये प्रस्थान कर गये और लखनऊके स्टेशनपर गाड़ीसे उतरनेपर डेविडसन साहबने कहा कि 'बेटा राजबिहारीलाल ! चलो जरा बाजार घूम आयें ।'

जब राजबिहारीलालजी साहबके लिये सवारी लेनेको कुछ आगेको बढ़े तो झटसे साहबने उन्हें रोककर कहा कि 'सवारीमें नहीं, पैदल ही चलेंगे ।'

दोनों बाजारके लिये पैदल ही चल दिये और एक पासके बाजारमें पहुँच गये । बाजारमें कुछ दूर चलनेपर डेविडसन साहब अकस्मात् एक ताला बेचनेवालेकी छोटी-सी दुकानपर जाकर रुक गये और उस ताला बेचनेवाले दुकानदारसे एक छोटा-सा मामूली-सा ताला जो ५-६ पैसेसे ज्यादाका न होगा, ले लिया और उसके हाथमें दो रुपयेका नोट रखकर आगेको बढ़ गये ।

कुछ दूर जानेपर पं० राजबिहारीलाल शर्माजीने साहबसे कहा कि 'साहब !' आपने इस ताला बेचनेवाले दुकानदारसे यह ताला तो कुल ५-६ पैसेका लिया है और उसे आपने बदलेमें नोट दो रुपयेका दे दिया है । उससे बाकीके पैसे वापस क्यों नहीं लिये ? आप उससे पैसे लेने भूल तो नहीं गये हैं ?'

इसपर श्रीकृष्णभक्त डा० डेविडसन साहबने कहा कि 'अरे भाई राजनारायण ! उस गरीब तालेवालेको आज पैसोंकी बड़ी सख्त जरूरत थी; क्योंकि इस गरीबके घर तीन दिनोंसे रोटी नहीं है—आगतक नहीं जली है और इसके बाल-बच्चे भूखसे बिलबिला रहे हैं ।' राजबिहारीलाल शर्माजीको डा० डेविडसनकी इन बातोंपर सहसा कुछ विश्वास नहीं हुआ और उन्होंने मन-ही-मन कहा कि साहब और हम दोनों साथ ही हापुड़से चलकर यहाँ आये हैं । एक दूसरेसे तनिक देरको भी पृथक् नहीं हुए; फिर इन साहबको कैसे मालूम हो गया कि इस गरीबके घर तीन दिनोंसे रोटी नहीं बनी या आग नहीं जली है और इसके बाल-बच्चे भूखसे बिलबिला रहे हैं । मालूम होता है कि साहब यह सब बनावटी बातें कर रहे हैं ।

उन्होंने साहबसे कहा—'साहब ! आपकी इन बातोंपर कैसे विश्वास किया जाय कि उसके बाल-बच्चे भूखसे बिलबिला रहे हैं और उसके घर तीन दिनोंसे आग नहीं जली है । यह आपको कैसे मालूम हो गया ?'

यह सुनकर डा० डेविडसन साहब मुस्कराये और पुनः पीछेकी ओर लौटे और ठीक उसी दुकानदारकी दुकानपर आकर रुक गये । पं० राजबिहारीलाल शर्माजी साथ थे ही । डा० डेविडसन साहबने जब उस दुकानदारसे अपने दिये नोटके बाकी पैसे वापस लौटानेके लिये कहा तो उस गरीब दुकानदारकी आँखोंमें आँसू भर आये और उसने दुःखभरे विनीत स्वरमें रोते और गिड़गिड़ाते हुए कहा—

'हुजूर ! मैंने तो आपके दिये उन पैसोंका अभी-अभी आटा लेकर अपने घरपर भेज दिया है । मेरे बाल-बच्चे तीन दिनोंसे भूखों मर रहे हैं । तीन दिनोंसे मेरे घर रोटी नहीं बनी—आग तक भी नहीं जली है । अब आप जो मुझे चाहें, दण्ड दें । मेरे पास इस समय आपको देनेके लिये पैसे नहीं हैं । मैं बड़ा ही लाचार हूँ ।'

तालेवालेके मुखसे उपर्युक्त बातोंको सुनकर पं० राजबिहारीलाल शर्माजी आश्चर्यचकित रह गये कि कुछ देर पूर्व डा० डेविडसनने जो बातें बतायी थीं, ठीक वही बातें अक्षर-अक्षर गरीब तालेवाला दुकानदार बता रहा है ।

श्रीकृष्णभक्त डा० डेविडसन साहबने पं० राजबिहारीलाल शर्माजीसे कहा कि 'मेरा लखनऊ आनेका एकमात्र कारण और एकमात्र उद्देश्य बस यही था । मुझे परम इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्णने यह प्रेरणा दी थी कि तू लखनऊ जाकर ताला बेचनेवाले उस गरीब आदमीकी कुछ मदद कर और उस प्रेरणासे ही मैं तुम्हें साथ ले करके यहाँ आया । मेरा यहाँ आनेका दूसरा कोई कारण नहीं है । मेरा यहाँ आनेका कार्य पूर्ण हो गया । इसलिये अब वापस हापुड़ चलो ।'

वस्तुतः श्रीकृष्णभक्तिसे डा० डेविडसनको अद्भुत सिद्धियाँ प्राप्त थीं ।

डा० डेविडसन भारतीय भोजनके प्रेमी और स्वयंपाकी कैसे बने ?

श्रीकृष्णभक्त अंग्रेज डा० डेविडसन साहबने जहाँ मांस, मदिरा, अण्डे, मुर्गे-मछली, बीड़ी, सिगरेट, शराब,

चाय आदि सबको खाना-पीना छोड़ दिया था। पूर्ण निरामिषभोजी बन गये थे । वहाँ आपके जीवनमें आगे चलकर ऐसा भी शुभ समय आया कि जब आप पूर्ण सात्त्विक भोजन करनेवाले स्वयंपाकी हो गये थे। आजकलके पथभ्रष्ट लोग गोभक्षकोंके जूँठे पात्रोंमें खा-पी लेते हैं, पर ये साहब किसीका भी जूँठा खाना-पीना पाप मानते थे और कहा करते थे कि जिसका खान-पान, रहन-सहन शुद्ध सात्त्विक नहीं है, वह कभी भी आत्मोन्नति नहीं कर सकता और न वह कभी अपना लोक-परलोक ही बना सकता है।

एक बारकी बात है कि आपके भोजन बनानेका कार्य उन दिनों एक मुसलमान खानसामा किया करता था। इन्होंने उस खानसामासे यह कह रक्खा था कि हमारे लिये अण्डे, मुर्गे, मांस-मछली आदि कोई भी तामसिक पदार्थ बिल्कुल ही न बनाये जायँ, किसी भी खाने-पीनेकी चीजको कभी भी जूँठी न की जाय और किसी भी चीजको भूलकर भी गंदे हाथ न लगाये जायँ। हमारे खाने-पीनेमें स्वच्छताका और पवित्रताका पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाय।

एक दिन उस मुसलमान खानसामाने डा० डेविडसनके लिये आलूकी सब्जी बनायी थी। आलूमें नमक ठीक पड़ा है या नहीं, यह जाननेके लिये मियाँने एक आलूको हँडियामें-से निकाला और अपने दाँतसे काटकर चख लिया और उस दाँत-लगे जूँठे आलूको पुनः सागकी उसी हँडियामें डाल दिया। वस्तुतः इन खानसामोंमें गंदगी, निर्दयता, अपवित्रता, अस्वच्छता आदि दोष भरे ही होते हैं। दया, पवित्रता, स्वच्छता, सात्त्विकता किसको कहते हैं, इसका इन्हें पता ही नहीं होता। अस्तु !

जब डा० डेविडसनके सामने खानसामा खाना लेकर आया तो प्लेटमें उसके दाँतसे काटा आलूका टुकड़ा भी आ गया । साहबने उस आलूके टुकड़ेमें दाँतोंके स्पष्ट चिह्न देखे ! देखते ही वे समझ गये कि इस खानसामाने आलूको अपने दाँतोंसे काटकर जूँठा किया है और वही जूँठा आलू यह मुझे खिला रहा है।

साहबने तुरंत खानसामाको बुलाया और कहा—'क्या तुम मुझे अपना जूँठा आलू खिलाते हो ?'

खानसामा—'हुजूर ! मैंने तो ऐसा कभी नहीं किया है।'

साहबने तुरंत वह दाँतोंका निशान लगा हुआ आलू उसे दिखाया और फटकार लगाते हुए उससे यह पूछा कि 'बताओ यह जूँठा नहीं है ?'

अब तो खानसामाके होश गुम हो गये। उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और वह कहने लगा कि 'हुजूर ! आगेको ऐसा कभी भी नहीं होगा। अब तो मुझे माफ करो।'

पर साहबने उस खानसामाको नहीं रक्खा और बहुत दिनोंतक अपने हाथोंसे बनाकर भारतीय हिंदू-भोजन करते रहे। साहबने पं० राजबिहारीलाल शर्माजीको हापुड़से अपने पास बुलाकर कहा था कि उस मुसलमान खानसामाने मुझे अपना जूँठा खिलाकर मेरा धर्म बिगाड़ दिया है। इसलिये अब मैं किसी भी मुसलमानके हाथका बना खाना कभी भी नहीं खाऊँगा। आज हमारे लिये तुम अपने घरसे खाना बनवाकर भेजना।

पं० राजबिहारीलाल शर्माजीने तुरंत घरपर खाना बनवाकर भेजा और जिसमें करेलेका साग उनके लिये विशेषरूपसे बनवा करके भेजा गया था। करेलेका साग साहबने बड़ी रुचिके साथ खाया। वह उन्हें इतना अधिक पसंद आया कि बहुत दिनोंतक अपने लिये तो मँगाकर खाते ही रहे, अपनी पत्नीको भी बनवाकर भेजते रहे और भारतीय भोजनके प्रेमी बन गये। शुरू-शुरूमें जब उन्होंने अपने हाथसे भोजन बनाना प्रारम्भ किया तो एक बार उनकी अँगुली जल गयी थी, पर बादमें धीरे-धीरे उन्हें अभ्यास हो गया । फिर तो वे अपने हाथसे बना भोजन करनेमें ही आनन्द मानने लगे थे। वे आचार-विचारका बहुत पालन किया करते थे। वे कहा करते थे कि शुद्ध सात्त्विक भोजनके द्वारा हमारा यह मन भी शुद्ध और सात्त्विक बन सकता है तथा शुद्ध सात्त्विक मनके द्वारा ही भगवान् श्रीकृष्णकी भजन-भक्ति हो सकती है । इसलिये भोजनपर ध्यान देना अत्यावश्यक है।

आज सुधार और प्रगतिके नामपर खान-पान भ्रष्ट हो गया है और किसीके भी हाथका कुछ भी खा-पी लेना, जूँठन खाना, अपवित्र रहना—उन्नतिके लक्षण बनते जा रहे हैं। यह बड़े ही दुःखका विषय है। हमारे भूले भाइयोंको इस सदाचारी, शुद्धाचारी, भक्त अंग्रेजके चरित्रसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

बोलो सनातन धर्मकी जय !

धरतीके देवता

[मनुष्यका देवत्व प्रकट करनेवाली सच्ची घटनाएँ]

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)

(१)

एक पौण्ड रक्त-दान दे दिया

बुन्देलखण्डमें नौगाँव !

सिविल हास्पिटलमें सर्जरी-विभाग ! कम्पाउन्डर और नर्सें बड़ी अस्त-व्यस्त हैं। आज एक खतरनाक आपरेशन होनेवाला है।

'हाय······हाय ! प्राण निकले ! बचाओ, मेरी जान बचाओ। मैं मरी !!'

एक गर्भवती स्त्रीके समीप भारी चिन्तामें डूबी कई नर्सें खड़ी हैं। रोगिणीके पेटमें असह्य पीड़ा हो रही है। यह गर्भवती ग्राम नागरासे प्रसव कराने आयी है। उस गाँवकी औरतका पति तथा अन्य सम्बन्धी भयातुर बाहर बैठे हुए क्षण-क्षण बच्चेके जन्म होनेका समाचार जाननेको उत्सुक हैं। उन सबके चेहरोंपर भावी आशंकाके काले चिह्न उभरे हुए हैं।

डाक्टर श्रीरुद्रदत्त खरे, असिस्टेंट सर्जन, रोगिणीका परीक्षण कर रहे हैं।

'अरे ! यह तो बड़ा सीरियस केस है—वेरी क्रिटिकल।'

'क्यों क्या हुआ ? अब रोगिणीका कैसा हाल है ?' बाहरवालोंने पूछा।

डाक्टर खरे भयसे चुप हैं। उनसे कुछ कहते नहीं बन रहा है।

'कहिये डाक्टर साहब, हम रोगिणीको बचानेके लिये सब कुछ खर्च करनेको तैयार हैं।' जेबसे नोटोंकी गड्डी निकालता हुआ पति बोला।

'महज रुपयोंसे काम नहीं चलेगा। इस कमजोर औरतका गर्भाशय फट गया है। बहुत-सा रक्त बह गया है और कमजोरी आ रही है। तुरंत इसे इसके खूनसे मिलता हुए किसी दूसरे व्यक्तिके खूनकी जरूरत है। एक पौण्ड खून मिल जानेपर इस बहिनके प्राणोंकी रक्षा हो सकती है।'

डाक्टर यह कहकर उपस्थित व्यक्तियोंके मुँहकी ओर देखने लगे।

पर खून कौन दे ?

सब रिश्तेदार चुप ! परिस्थिति विकट है। सब गुमसुम बैठे हैं। इनके मुँहमें जिह्वा नहीं है क्या ?

डाक्टर फिर बोले—

'हमें आपके रुपये नहीं चाहिये। रोगिणीके रक्तसे मिलनेवाला रक्त चाहिये। यह वह चीज है, जो रुपयोंसे नहीं खरीदी जा सकती। अपने रुपये जेबके हवाले कीजिये और एक-एक करके आप सब अपने खूनका परीक्षण कराइये। परीक्षणमें इसके रक्तसे जिसका रक्त मिलेगा, उसीका रक्त रोगिणीके शरीरमें चढ़ा देंगे, उसकी ताकतसे इसके प्राण निश्चित रूपसे बच जायँगे। रक्तकी कमीके कारण रोगीमें बहुत कमजोरी आ गयी है। बिना खून चढ़ाये, इसका बचना कठिन है। वेरी सीरियस केस। लाइफ इन डेन्जर !'

डाक्टरकी बातें सुनकर रिश्तेदारोंमें कानाफूसी शुरू हो गयी।

'तू दे न अपना खून ! तू तो इसका पति है।'

'न भाई, मुझे तो डर लगता है। खून देकर मैं कमजोर और बीमार हो जाऊँगा। मुझसे पैसा जितना चाहो, खर्च करा लो। और जो कुछ कहो, वह कर दूँ, पर खून निकलवाकर मरना मंजूर नहीं। नहीं, मैं अपना खून न दे सकूँगा।' मौतसे डरता हुआ पति बोला।

'तो और कोई इसे खून दो। देर न करो, आगे आओ। रोगिणीका जीवन खतरेमें है।'

अब बातचीत बंद हो गयी। सब रिश्तेदार चुप हो गये। मौत-सा सन्नाटा छा गया। सब रिश्तेदार एकाएक चुप हो गये। खून देनेके लिये कोई भी तैयार न हुआ।

अब क्या हो ?

क्या इस गाँववाली गर्भिणीको एक पौण्ड खून न मिलनेके कारण मौतके हवाले कर दिया जाय ?

क्या किसीमें दया, परोपकार, त्याग और बलिदान नहीं है ? इतनेमें डाक्टरकी अन्तरात्मा जाग उठी।

उसके अंदरसे बैठा हुआ परमात्मा बोल उठा, 'नहीं, इस गरीबनीके प्राण बचने चाहिये। बेचारी अभी युवती है। इसने जीवनमें देखा ही क्या है। यदि और कोई कुछ सहायता नहीं करता, तो डाक्टर तू ही कोई उपाय कर जिससे इसके प्राण बचें।'

कुछ सोचकर डाक्टर साहब रक्त-परीक्षण-विभागमें गये। उन्होंने अपने देवत्वकी अवहेलना न की। वे सोचने लगे, 'परोपकारके अवसर जीवनमें कब-कब आते हैं! ईश्वर मेरे धर्मकी परीक्षा ले रहा है। मैं इसमें खरा उतरूँगा। अपना रक्त देकर यदि मैं एक प्राणीकी रक्षा कर सकता हूँ, तो क्यों पीछे हटूँ। सबसे बड़ा धर्म वह है जो दूसरेके काम आता है।'

संयोगसे उनका रक्त रोगिणीके रक्तसे मेल खा गया। उन्होंने कम्पाउन्डरसे अपना रक्त निकालनेकी आज्ञा दे दी। रक्त निकाला गया और रोगिणीके चढ़ाया गया। ईश्वरकी कृपा और डाक्टरके रक्त-दानसे उस रोगिणीकी प्राणरक्षा हो गयी।

उधर बाहर बैठे सम्बन्धी रोगिणीके मरनेकी सूचनाकी प्रतीक्षामें बैठे हुए थे। वे शवको फूँकनेकी योजनाएँ बना रहे थे। न खून मिलेगा, न वह बचेगी। इतनेमें कम्पाउन्डर बाहर निकला।

उन्होंने पूछा, 'तबियत कैसी है? डाक्टर खरे बाहर नहीं निकले हैं? क्या आपरेशन हो चुका है?'

कम्पाउन्डरने व्यंग्यमिश्रित स्वरमें कहा, 'तुम हृदयहीनोंने जब अपना रक्त देनेसे इन्कार कर दिया, तो खुद उदारमना डाक्टर खरेने अपना एक पौण्ड रक्त रोगिणीके निर्बल शरीरमें चढ़वाकर उसकी प्राणरक्षा की है। उनका रक्त न चढ़ाया जाता तो वह निश्चय ही मर जाती, किंतु अब वह खतरेसे दूर है···।'

रिश्तेदार आश्चर्यसे यह सब सुन रहे थे। अब उन्हें अपनी हृदयहीनता और स्वार्थपर बड़ी लज्जा आ रही थी।

डाक्टर रुद्रदत्त अपने एक पौण्ड खूनका मूल्य कुछ भी ले सकते थे। जब वे ग्रामीण उन्हें चार सौ रुपये देने लगे, तो वे बोले—

'यह रक्तदान मैंने पैसेके लोभसे नहीं किया है। जनकल्याणके इस देवकार्यको पैसा लेकर मैं अपने पेशेको कलङ्कित नहीं करना चाहता। मैं उस जीवनको बेहतर समझता हूँ, जिसमें बहुमूल्य शक्तियोंका अधिकाधिक उपयोग परार्थ होता है। परमार्थ-वृत्तियोंको विकसित करनेसे मनुष्य देवत्वकी ओर अग्रसर होता है और पृथ्वीपर स्वर्गका वातावरण उपस्थित करता है।'

डाक्टर रुद्रदत्तका त्याग और बलिदान मानवताके लिये गर्वका विषय है। युग-युगतक वह स्मरणीय रहेगा। देवत्व ही मनुष्यका गौरव है।

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥
(ऋग्वेद १०।१५१।१)

अर्थात् श्रद्धापूर्वक किये गये लोकोपकारी कर्म ही ध्येय सिद्धिका सामर्थ्य रखते हैं। अतः मनुष्यको परोपकारकी प्रवृत्ति ही रखनी चाहिये।

(२)

बलिदानी सुभाषको रक्षा-पदकका सम्मान

८ नवम्बर, १९६२

नई दिल्ली! यमुनाका कुदसिया घाट। स्नानकी भीड़।

सुबहके समय प्रायः धार्मिक प्रवृत्तिकी हिंदू महिलाएँ यहाँ प्रातःस्नानके लिये प्रतिदिन ही आती रहती हैं। इस स्नानका धार्मिक महत्त्व है। हिंदूधर्मप्राण नारियाँ तो बड़े तड़के ही स्नान करने चल पड़ती हैं और प्रभातकालीन अँधेरेकी भी परवा नहीं करती हैं। कैसा अटल है उनका धार्मिक विश्वास!

प्रातः वेलामें स्नान चल रहा है। यमुना-घाटपर धर्मप्राण पुरुष-स्त्रियोंकी उथल-पुथल 'जय यमुना मैया', 'हर हर महादेव' के उन्मत्त स्वर सुन पड़ रहे हैं। जलमें नहानेकी खलबलीकी मिश्रित ध्वनियाँ! सब 'सी-सी' करते धर्मका आनन्द ले रहे हैं।

दरियागंजके कमर्शल हायर सैकेंडरी स्कूलका एक १६ वर्षीय छात्र सुभाषचन्द्र अपने साथियोंसहित प्रायः सुबह टहलने उधरसे ही निकला करता है। जैसे ही ये लड़के कुदसिया घाटके समीप टहलते-टहलते निकलते हैं, एकाएक इन्हें स्नान करनेवालोंमें एक भय-मिश्रित शोर सुन पड़ता है। लगता है जैसे कोई नहानेवाला डूबनेकी संकटमय स्थितिमें है—

'अरे! कोई दौड़ो, बचाओ' कुछ नहाती हुई स्त्रियाँ यमुनाजीके भँवरमें फँस गयी हैं। बेचारी डूब जायँगी···

हाय ! हाय ! वे बड़े खतरेमें हैं। कोई साहसी आदमी उनकी फौरन मदद करो। भागो, प्राणरक्षा करो। वे औरतें तैरना भी नहीं जानतीं कि भँवरसे निकल आयें... सहायता...फौरन मदद चाहिये...हाय ! हाय! वे डूब रही हैं !'

आवाजोंमें करुणा और वेदनाके साथ स्थितिकी भयंकरता स्पष्ट हो रही थी।

ओफ़ ! तो क्या क्रूर मौतके हाथों अबोध स्त्रियोंका जीवन-कुसुम मसलकर रख दिया जायगा !

क्या नियतिका निरंकुश चक्र नारियोंकी विवशता और निर्बलताको क्षमा न करेगा !

दुनियाके जगनेसे पूर्व ही क्या इनके जीवन-सूर्य अस्त हो जायँगे ?

क्या किसी साहसीकी सबल भुजाएँ इन डूबती हुई अबलाओंको सहारा न देंगी ? क्या कोई पुरुषार्थी हथेलीपर सिर धरकर यमुनाकी अगम गहराइयोंसे इन्हें न निकालेगा ?

विद्यार्थी सुभाषचन्द्र घाटपरसे आती हुई करुण पुकारको अनसुनी न कर सका। औरतोंको डूबनेसे बचानेके लिये वह आगे-आगे भगा, तो उसके साथियोंके पाँवोंमें भी उत्साह जगा। वे सब जल्दी-जल्दी दौड़ते हुए घाटपर पहुँचे।

देखा, वहाँ भगदड़ मची है। भयंकर शोरगुल और भागदौड़ हो रही है। कुछ स्त्रियाँ और भावुक पुरुष सहायताका उपक्रम कर रहे हैं, पर भँवरमें तैरकर स्त्रियोंको बचा लानेकी हिम्मत किसीकी नहीं पड़ रही है। सभी 'कोई कूदो। कोई तैरो ! भागकर जल्दीसे तैराकोंको बुलाओ।' कह रहे हैं। कहनेवाली अनेक जिह्वाएँ हैं, असली काम करनेवाला हाथ एक भी नहीं।

तो क्या भँवरमें फँसी ये दुखी नारियाँ सदा-सदाके लिये, सूर्य उगनेसे पूर्व मौतकी काली-काली गोदमें सो जायँगी ?

बालक सुभाषचन्द्रकी आत्माने उसे झकझोरा—

'सुभाष, तेरे अंदर देवत्व सो रहा है। इस जीवनका सबसे उत्तम उपयोग यह है कि वह मुसीबतमें फँसे प्राणियोंकी रक्षामें काम आये। जीवनका सबसे बड़ा लाभ परमार्थ है। दूसरोंकी सेवा, सबसे सहयोग, विपत्तिमें फँसे प्राणियोंकी सहायता, हर सम्भव तरीकेसे परोपकारसे ही मनुष्य देवता बनता है। इस जीवनमें शान्ति पाता है, यशस्वी बनता है, लोक-परलोक बनाता है। ऐसा शानदार अवसर हाथसे मत जाने दे। कुछ धर्मका काम कर बैठ, इन डूबती हुई औरतोंको बचाकर जीवन धन्य कर ले।'

यह सोचते-विचारते बालक सुभाष जूते उतारकर कपड़ोंसहित 'धम्म' से यमुनाकी लहरोंमें कूद पड़ा।

'अरे ! वह लड़का कूदा। वह सहायताके लिये चला। यह लो, वह तो भँवरमें फँसी स्त्रियोंतक पहुँच चुका है। 'वह उन्हें किनारेकी ओर घसीट रहा है।'

'यह लो वह उन तीनोंको खींच रहा है। अब वह लौट रहा है। स्त्रियाँ खिंची हुई किनारेकी ओर आती हुई दिखायी दे रही हैं।'

आखिर वीर लड़केने उन डूबती हुई स्त्रियोंको बचा ही लिया। उन घबरायी हुई स्त्रियोंके पाँव पानीमें टिक गये। वे जल्दी-जल्दी पानीसे निकलीं। मुँहपर हवाइयाँ छायी थीं।

धन्य है वह वीर सुभाष जिसने यमुनाकी भँवरसे इन तीनोंके प्राण बचाये हैं। कहाँ है वह ? हम उसकी पीठ थपथपायें। उसके वीरोचित कार्यके लिये उसे शाबाशी दें। उसे सिरमाथेपर रक्खें। वह बालक मानवताका आभूषण है।

पर यह क्या ?

वह तो नदीसे वापस आता नहीं दिखायी दे रहा है। किधर है सुभाष ? पानीमें नजरें गड़ी हैं, उस परमार्थीको खोजती हुई।

सब नेत्र उधर ही लगे हैं। खतरेसे बची नारियाँ भय और आशङ्कामें डूबी विस्फारित नेत्रोंसे सुभाषके आनेकी प्रतीक्षा कर रही हैं। वे सोच रही हैं कि उसे कृतज्ञतामें क्या-क्या कहेंगी ? अपने प्राण बचानेवाले उस साहसी युवकको किन-किन शब्दोंमें धन्यवाद देंगी।

पर हाय.....सुभाष जलसे न निकल सका। उत्सुक नेत्र उधर अटकेके अटके ही रह गये। निराशा.....और गरम आँसुओंसे भीगे-भीगे।

उस साहसी लड़केने भँवरसे उन स्त्रियोंको तो बचा लिया था, पर स्वयंको यमुनाकी तेज लहरोंसे वह न बचा पाया था। क्रूर लहरोंने उसे अपनी ठंडी गोदमें सुला लिया था। मानवताका एक जगमगाता हीरा सहसा खो गया था, एक देदीप्यमान ज्योति मानो अपना दैवी प्रकाश दिखाकर एकाएक विलुप्त हो गयी थी।

वीर बलिदानी सुभाषकी कहानी उसके पिता श्रीआर० आर० खुरानाको दिल्लीके चीफ कमिश्नरने अपने निवास-स्थानपर आयोजित एक समारोहमें सुनायी। यह सब सुनकर पिताका मस्तक गर्वसे उन्नत हो उठा। साहसी सुभाषको प्रथम श्रेणीका रक्षा-पदक (मरणोत्तर) प्रदान किया गया।

जीवन वही धार्मिक है, जो दूसरोंके काम आये।

ईश्वरने मनुष्यमें वे सब दिव्य गुण बीजरूपसे रक्खे हैं, जो स्वयं उनमें विद्यमान हैं। हाड़-मांसके ये चलते-फिरते आदमी कहलानेवाले जीव परमात्माके ही छोटे रूप हैं।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिꣳ सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥
(यजुर्वेद ३१ । १)

स्मरण रखिये, जो परमात्मा असंख्य सिर, आँख और पाँववाला है, जो पाँच स्थूल और पाँच सूक्ष्म भूतोंसे युक्त संपूर्ण विश्वमें व्याप्त है, (वह मनुष्यके हृदयमें भी विराजमान है। वह भाँति-भाँतिसे मनुष्यके सत्कर्मोंके रूपमें प्रकट होता रहता है और हममें अपने दैवी स्वरूपका प्रत्यक्ष प्रमाण देता रहता है।) उस नित्य शुद्ध-बुद्ध और मुक्त स्वभाव परमात्माकी ही हम उपासना करें। इसीसे हमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी प्राप्ति होती है।

हममें देवत्व प्रचुरतासे भरा पड़ा है तथा विभिन्न रूपोंमें वह प्रकट होता रहता है। त्याग, बलिदान, सेवा, सहयोग, परस्पर सद्भावपर ही परमात्माका सारा कारोबार चल रहा है।

(३)

शीला हतप्रभ हो उठी

खड्ड! खड्ड! खड्ड!

खटपटकी ध्वनि करती हुई बस एकाएक रुकी। उसमें आज भयानक भीड़ थी। बड़ी कठिनतासे आज बसमें खड़े-खड़े ही शीलाने यात्रा की थी। भगदड़ तथा जल्दबाजीमें उतरनेवाले मुसाफिर शिष्टताकी परवा किये बिना जल्दी-जल्दी बससे उतर रहे थे।

नयी सवारियाँ बेताबीसे बसमें फिर चढ़ने लगीं। गुत्थमगुत्था हुई। थोड़ी देरमें बस-स्टैन्डपर आकाशमें घिरे बादलोंकी तरह भीड़ हो गयी; फिर बसके चलते ही लोग बाजारमें तितर-बितर हो गये।

मिले और बिछुड़े! यही संसारका चक्र है। कुछ नये यात्री बसमें चढ़े, मानो पंख लगाकर आकाशमें उड़े। बस, जैसे पंखोंवाली चिड़ियाकी भाँति फुर्र हो गयी।

इन उतरनेवाले यात्रियोंमें लड़के भी हैं, बड़ी उम्रके अधेड़ भी और चींटीकी तरह नोन-तेल, लकड़ीके सांसारिक-चक्रमें फँसे गृहस्थी भी। स्त्रियाँ तथा पुरुष सभी तो हैं।

शीला बसमेंसे उतरकर जल्दी-जल्दी अपनी चुन्नी सँभाल रही थी। उसने पहले अपनी पुस्तकोंको सँभाला। फिर अपने लम्बे कमीजके गलेमें लगे फाउन्टेनपेनको टटोला। फिर गलेपर हाथ गया। उसने अपने सोनेके कण्ठहारको टटोला।

अरे! यह क्या? उसका सोनेका नेकलेस कहाँ है? गला खाली है।

उफ्! गजब हो गया। शीलाका नेकलेस···गायब···था···।

नेकलेस खो जानेसे बेचारी शीलाकी तो वह हालत हुई कि काटो तो खून नहीं। नुकसानके कारण उसका चेहरा विषाद, भय और आवेशमें फक् पड़ गया। वह गम्भीर उलझनमें पड़ गयी।

'हे परमेश्वर! मुझसे बड़ा भारी नुकसान हो गया। किसी पाकेटमारने कण्ठहार काट लिया।

उसने मानसिक व्यथासे माथा पकड़ लिया। नारी-सुलभ भावुकताने उसे एकाएक द्रवित कर दिया। पछताती और कलपती हुई वह अविचलित पत्थरकी जड़ मूर्तिकी तरह खड़ी थी, निष्प्राण···निश्चल···गुमसुम।

बेचारी क्या करे अब?

शीलाके सामने अपने नेकलेसके खो जानेकी गम्भीर समस्या आ गयी, हिमालय पर्वतके सदृश। न जाने आजकी भीषण मँहगाईमें कैसे उसके गरीब माता-पिताने वह हार बनवाया था। कितने संयमद्वारा पैसे इकट्ठे किये थे। आजकल दिन-रात मेहनत-मजदूरी कर न जाने क्या कैसे खाकर मनुष्य अपना और अपने परिवारका उदर पोषण करता है। किसी प्रकार इज्जत बचाये रहता है। एकाएक नेकलेसमें लगी पूँजीके नुकसानने शीलाको एकदम जड़ और निश्चेष्ट-सा बना दिया। वह पगली-सी होकर इधर-उधर विस्फारित नेत्रोंसे देखने लगी। चिन्तनकी गहराइयोंमें डूबकर वह सोच

रही थी कि अब क्या करे ? किससे भारी नुकसानकी बात कहे ? आजके सन्देहशील युगमें किसी युवतीका बिना मतलब किसी परपुरुषसे बातें करना भी तो खतरेसे खाली नहीं है।

एक भले मानुष अधेड़ सज्जनने हतप्रभ दुखी लड़कीको ध्यानसे देखकर अनुमान लगाया कि अवश्य दालमें कुछ काला दीखता है। पूछताछ कर अबलाकी सहायता करनी चाहिये।

वे सज्जन समीप आये। उत्साह भरे स्वरमें बोले—'नन्ही बहिन! बससे उतर कर चकित विस्मित खड़ी-की-खड़ी कैसे रह गयी ? क्यों, क्या मामला है ! क्या तुम्हारा कुछ खो गया है ?'

शीलाने सन्देह और भयातुर करुणस्वरमें नुकसानकी बात कह सुनायी। या तो किसी पाकेटमारने सोनेका नेकलेस उड़ा लिया, अथवा कुण्डी टूट जानेसे नेकलेस बसमें ही गिर पड़ा।

दीर्घ श्वास छोड़कर वह बोली—'मुसीबत यह है कि उस बसका नम्बर तक मुझे याद नहीं है जो पूछताछ करती।'

उसकी जीभ लड़खड़ा गयी। शब्द रुक गये।

वे सज्जन बोले—'नम्बर तो मुझे याद है। मैं भी तो तुम्हारे साथ उसी बसमेंसे उतरा हूँ। तुम्हें नम्बर चाहिये तो मैं बता सकता हूँ।'

'वह क्या है ? कृपा कर मुझे बताइये।' शीलाने उत्सुकतासे पूछा।

'वह तो ८१ नम्बरकी बस थी।' वे बोले—

'शायद उसका कंडक्टर हारके विषयमें कुछ बता सके।'

'हाँ, ईमानदारी और सज्जनताके आधारपर ही यह समाज उन्नति करता है। परस्पर विश्वासपर ही दुनियाका सारा कारोबार चल रहा है। मानवीय प्रगति और शान्तिका यही आधार है। जब ईमानदारीकी नींव हिल जाती है, तब संसारके विनाशका खतरा उत्पन्न हो जाता है। टेलीफोन कर हमें अगले बस-स्टैन्डपर उस बसके ड्राइवर और कंडक्टरको सूचना देनी चाहिये।'

दोनों व्यक्ति समीपकी दूकानपर टेलीफोन करने लगे।

पूछनेपर पता चला कि वह बस उस स्टापपर भरी हुई होनेके कारण रुकी ही नहीं थी। अब फिर उलझन सामने आयी। समय बीता जा रहा था। जितनी देरी, उतना ही बसका मिलना कठिन। उन्होंने बसोंके हेड आफिसमें टेलीफोन किया।

वहाँ भी कोई सज्जन ही थे। उन्होंने उत्तर दिया 'यदि नेकलेस बसमें मिला, तो ध्यान रक्खा जायगा। पर खोई हुई वस्तुकी प्राप्तिकी कोई गारंटी नहीं दी जा सकती।'

जवाब सुनकर शीला चिन्तित और व्यग्र हो उठी। उसके छोटे-से हृदयने कभी इतनी बड़ी आर्थिक हानिकी बात न सोची थी। वह दुःखसे बेहाल थी। उसकी जिज्ञासा और चिन्ताका छिपना कठिन हो गया।

वह जल्दी-जल्दी हड़बड़ा कर अपने घर पहुँची और रात होते-होते हैरान-सी अपने पिताजीके साथ बसोंके हेड आफिसमें पहुँची। वह और उसके पिता—दोनों ही उद्विग्न और चिन्तित अवस्थामें थे। रात होती जा रही थी। सब बसें वापिस पहुँचकर खड़ी हो चुकी थीं। डिपो बसोंसे भरा था और कर्मचारी लोग घर जानेकी तैयारीमें थे।

'आप गुमशुदा मालके दफ्तरमें जाकर नेकलेसके विषयमें पूछताछ कीजिये।'

'वह कहाँ है ? कृपाकर हमें वहाँतक पहुँचा दीजिये।'

बसके एक कर्मचारीको दया आ गयी। वह उन्हें लेकर डीपोके आखिरी किनारेपर स्थित कमरेमें पहुँचा, 'यह रहा गुमशुदा विभाग। आप यहाँ पूछताछ कर लीजिये। ईमानदारी और मेहनतकी कमाई व्यर्थ नहीं जाती।'

'क्या बात है ! आप दोनों हड़बड़ाये-से क्यों हैं ! इन छोटी बहिनजीकी आँखें सूजी हुई क्यों हैं ?' कर्मचारीने सहानुभूतिपूर्ण स्वरमें कई सवाल पूछ डाले, क्या कोई चीज खो गयी है इनकी ?'

'जी हाँ' शीलाने भर्राये हुए करुण स्वरमें बोली, 'मैं आज ८१ नम्बरकी बससे यात्रा कर रही थी। मेरा सोनेका नेकलेस गलेसे गायब है। सम्भव है वह किसीको बसमें पड़ा मिला हो ?'

वह उत्सुकतापूर्वक अपलक कर्मचारीके मुँहसे आशाजनक उत्तरकी प्रतीक्षा कर रही थी। मनमें सोच रही थी धर्मकी कमायी व्यर्थ नहीं जाती।

'किस डिजाइनका था आपका नेकलेस ?'

शीलाने टूटी-फूटी भाषामें नेकलेसके डिजाइनको समझानेकी कोशिश की, पर विक्षोभमें उसका पूरा वर्णन न कर पायी। उसे अपने नेकलेसका ब्यौरा याद भी तो न रह सका था।

'अनुमानतः वह कितने तोलेका होगा ?'

पिता बीचमें ही बोला, 'मैं बताता हूँ। इस लड़कीको क्या पता कितनी मेहनत और ईमानदारीकी कमाईसे वह बना था। वह साढ़े तीन तोलेका असली सोनेका था, फूल-पत्तीके डिजाइनवाला। फूलोंमें लाल और सफेद नगीने जड़े हुए हैं, नया-सा लगता है।'

वे निर्णयकी उसी प्रकार उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे थे, जैसे कोई मृत्युदण्डका अपराधी अपने बचनेका निर्णय सुननेकी आशा किया करता है। इन आशाप्रद सपनोंकी बड़ी विचित्र-सी तस्वीर होती है। दोनोंके मनमें आशा-निराशाकी खलबली मची हुई थी। कच्चे धागेसे आशा बँधी थी।

'आपका नेकलेस हमारे यहाँ जमा हुआ है अभी कुछ देर पहले ही। उस बसके कंडक्टरने हमारे दफ्तरमें जमा कर दिया है।

'ओफ् ! तो मेरा गुमशुदा नेकलेस मिल गया !' अहह ! शीला आनन्दसे नाच उठी।

इस अप्रत्याशित समाचारको सुनकर शीला और उसके पितामें तो जैसे नया जीवन ही आ गया। लड़कीने शान्ति और संतोषकी दीर्घ निःश्वास छोड़ी। वृद्ध पिता भी हर्षसे चौंक उठा। अर्द्ध-निमिलित पलकोंको वह बार-बार खोलने लगा, आश्चर्य ! अन्धकारमें जैसे प्रकाशकी एक स्वर्णिम रेखा खिंच गयी हो !

खोया हुआ सोनेका नेकलेस पाकर वे आनन्दसे विह्वल हो उठे ! 'कैसे हार मिला ? वह आपको किसने दिया ?'

वे उत्सुकतासे पूछने लगे। स्वरमें आशा और उल्लास था। मनमें शान्ति। अधिकारी बोला, 'आप तनिक संतुलित हूजिये। अपने खोये हुए नेकलेसके सम्बन्धमें हमें और जानकारी दीजिये। तभी वह आपको मिल सकता है।'

हैरानसे होकर शीलाके पिता नेकलेसके बारेमें और जानकारी देने लगे। फिर उनसे साक्षी लानेको कहा गया। सैकड़ों मुसीबतोंके बाद वह नेकलेस उन्हें मिला। तब उन्होंने शान्तिकी साँस ली।

'मैं उन ईमानदार कंडक्टर महोदयका नाम जानना चाहता हूँ।'

'ये दिल्ली वेस्टके कंडक्टर श्रीपरशुराम अम्बाजी सावन्त थे। इन्हींकी नेकनीयतीकी वजहसे यह नेकलेस आपको मिल रहा है। मामूली कच्ची नीयतका आदमी उसे हजम कर जाता। इन्होंने उसे सँभाला और गुमशुदा मालके दफ्तरमें जमा करा दिया। किसीकी चीज लेना, दूसरेको न बताना, मुफ्तमें हड़प लेना भी तो अधर्म है। चोरी है। हमारे यहाँ इनकी ईमानदारीके कई किस्से हैं। इन्हें धरतीके छोटे-मोटे देवता ही समझो।'

दोनों कंडक्टर साहबकी ईमानदारीकी प्रशंसा करते हुए अपना नेकलेस लेकर खुशी-खुशी बाहर निकले। वे मनमें कहते जाते थे कि धर्म वही है, जिसका हम प्रतिदिनके व्यवहारमें उपयोग करते हैं। जो धार्मिक पुस्तकोंमें पढ़े हुए सिद्धान्त हैं, वे चाहे कितने ही अच्छे हों, बिना उपयोगके व्यर्थ ही हैं।

हमारे यहाँ कहा भी है—

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥
(यजु० ४० । १)

स्मरण रखिये, इस संसारमें सर्वत्र परमात्माकी सत्ता समायी हुई है। यह जानकर जो ईमानदार आदमी दूसरोंके धनका अपहरण नहीं करता, वह धर्मात्मा पुरुष इस लोकमें सुख और परलोकमें मोक्ष प्राप्त करता है।

मनुष्यकी ईमानदारी भी देवत्वका एक ही अंग है। ईश्वर ईमानदारके घरमें निवास करता है। जो आदमी अपने सामाजिक लेन-देनमें ईमानपर कायम रहते हैं और अपना कर्तव्य पूरा करते हैं, वे स्वर्गमें रहनेवाले देवताओंसे किसी हालतमें कम नहीं हैं।

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत।
अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि॥
(अथर्ववेद ७ । ११५ । १)

अर्थात् हम पापकी कमायी न करेंगे, न अपने पास ही रक्खेंगे। उसे सदैव अपने शत्रुओंके पास ही रहने देंगे; क्योंकि पापकी कमायीसे उनका सर्वनाश होना निश्चित ही है।

प्राण-चिकित्सा

(लेखक—श्री जी० एस० राव, अध्यक्ष रसायन-विभाग श्री० मु० म० टा० महाविद्यालय, बलिया उ० प्र०)

कई वर्ष पहलेकी बात है। सन् १९५२ के ग्रीष्मावकाशमें मैं अपने जन्मस्थान काकिनाडा पहुँचा और कुछ ही दिनों पश्चात् मैं तीव्र एवं असह्य कर्णशूल तथा कर्णशोथसे पीड़ित हो गया। अनेक दवाइयोंके सेवनसे भी कोई लाभ नहीं हुआ। मेरी बेचैनी बढ़ती गयी। गीताका वाक्य 'मामेकं शरणं व्रज' मुझे याद आया और मैंने यथासम्भव भगवान्‌का नामोच्चारण मन-ही-मन करना प्रारम्भ किया; किंतु कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ।

ठीक उसी समय हमारे जन्मस्थान काकिनाडामें 'कुसुम हरनाथ' का उत्सव मनाया गया। उसमें विशिष्ट व्याख्यान देनेके लिये श्रीराल्लवण्डि वीरभद्र राव नामक एक हरनाथ बाबाके अत्यन्त आत्मीय भक्त एवं हरनाथ-पन्थके प्रचारक भी आये हुए थे। उनको हमलोग अपनी भाषामें नान्नगारु (जिसका अर्थ बाबूजी होता है) के नामसे सम्बोधित करते हैं; क्योंकि व्यक्तिमात्रके प्रति वे पितृ-तुल्य वात्सल्यके साथ व्यवहार करते हैं। (ये अभी जीवित हैं और आन्ध्र प्रदेशके गुन्टूर नामक स्थानमें रहते हैं तथा इन्होंने वहाँपर राधाकृष्ण-मन्दिर भी बनवाया है।) संकोची स्वभावके कारण मैंने दो दिनतक उनसे अपनी पीड़ाके बारेमें नहीं कहा; परंतु तीसरे दिन मैंने साहस करके उनसे अपनी व्यथा कह ही डाली। उस समय उन्होंने मुझे स्नेह-सिञ्चित वाक्योंद्वारा डाँटा और कहा—'तुमने दो दिनतक क्यों इसको छिपा रक्खा था।' उन्होंने मुझे आँखें बंद करनेके लिये कहा और दो मिनटतक अपने दाहिने हाथको मेरे कानपर रक्खा। आश्चर्यकी बात है कि दर्दके साथ-ही-साथ सूजन भी समाप्त हो गयी। इससे मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि ओषधियोंके अतिरिक्त भी एक शक्ति है जो रोगोंके उपचारमें सहायक है।

श्रीकाशी-ज्योतिष-समितिके मन्त्रीके रूपमें एक बार मैंने वाराणसीमें अपने ही निवास-स्थानपर एक सभाका आयोजन किया, जिसके सभापति वाराणसेय संस्कृत-विश्वविद्यालयके अनुसंधान-संचालक डा० के० चट्टोपाध्याय थे और प्रमुख वक्ता मेरे मित्र श्रीवासुदेव मेहरोत्रा थे, जो वाराणसीके श्रेष्ठ सामुद्रिक-शास्त्रियोंमेंसे एक हैं। उस सभामें डा० चट्टोपाध्यायजीद्वारा कथित एक वास्तविक घटनाका उल्लेख किया जाना अनुपयुक्त न होगा।

एक बार चट्टोपाध्यायजीकी माताजी बुरी तरहसे अस्वस्थ हो गयीं। अनेक चिकित्सकोंके उपचारसे भी कोई लाभ नहीं हुआ तब घबराकर चट्टोपाध्यायजीने एक तान्त्रिकको बुलाकर उनसे महामृत्युञ्जय-जपका अनुष्ठान शास्त्रीय विधिसे कराया। अनुष्ठानके प्रभावसे उनकी माताजीकी दशा सुधरने लगी और अन्तमें वे स्वस्थ हो गयीं; स्वस्थ तो हो गयीं, परंतु उनके हृदयमें जीनेकी इच्छा नहीं रही। अन्ततोगत्वा एक बार उन्होंने चट्टोपाध्यायजीसे कहा—'बेटा! अब तो मैं बिल्कुल ठीक हो गयी हूँ, तुम इस अनुष्ठानको शीघ्र बंद करा दो। मुझे यह अच्छा नहीं लगता है।' चट्टोपाध्याय विनम्र स्वरमें बोले—'माताजी! आपके स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये ही मैं इस अनुष्ठानको अभी कुछ दिनोंतक और करवाना चाहता हूँ। अतः इसमें आपको बाधा नहीं डालनी चाहिये।' लाख समझानेपर भी माताजीने एक न मानी। परिणामतः विवश होकर चट्टोपाध्यायजीने पण्डितजीको दक्षिणा देकर अनुष्ठानको बंद करा दिया। दूसरे ही दिन उनकी माताजीकी मृत्यु हो गयी।

इस घटनासे एक बात स्वयं सिद्ध हो जाती है। वह यह है कि मन्त्र-बलसे रोग-निवारण हो सकता है; परंतु उसका प्रभाव कभी-कभी (दवाकी भाँति ही अस्थायी होता है। जिस प्रकार छाताके प्रयोगसे वर्षाके समय किसी पथिकको लाभ हो सकता है, उसी प्रकार मन्त्रोंके प्रयोगसे भी कभी-कभी लाभ हो जाया करता है।

बाबर और हुमायूँके जीवनसे सम्बन्धित एक घटनाको प्रायः सभी जानते हैं। एक बार जब हुमायूँ बुरी तरहसे व्याधिग्रस्त हो गया तो बाबरने भगवान्‌से प्रार्थना की कि हुमायूँका रोग मिट जाय तथा वह रोग स्वयं उनको हो जाय।' भगवान्‌के दरबारमें बाबरकी प्रार्थना स्वीकृत हुई। हुमायूँ बच गये और उनके स्थानपर बाबर मर गये। प्रबल तथा सच्ची हार्दिक इच्छासे एक व्यक्तिका रोग दूसरा व्यक्ति स्वयं भोगकर उसे रोगसे मुक्त कर सकता है। पर ऐसे बहुत ही कम प्रसङ्ग होते हैं। कहते हैं कि ईसामसीहने

अनेक व्यक्तियोंका पाप स्वयं भोगकर उन लोगोंका उद्धार किया था।

आन्ध्रप्रदेशमें पामुल नरसय्या नामक एक विख्यात व्यक्ति रहते थे, जो रेलवेमें स्टेशन-मास्टरका कार्य करते थे। उन्होंने साँपका विष उतारनेके मन्त्रको सिद्ध कर लिया था। मीलों दूरपर भी किसीको साँप काट लेता था तो फोनद्वारा इनके पास लोग सूचना भेजते थे और वे उसी समयसे अपना मन्त्रका प्रयोग प्रारम्भ कर देते थे। प्रयोग समाप्त होते ही सर्प काटे हुए व्यक्तिका विष उतर जाता था। दूसरे भी इस प्रकारके उपचार सम्भव हैं जो 'दूर-उपचार' कहा जाता है।

ऊपर केवल कुछ वास्तविक घटनाओंका उल्लेख किया गया है; परंतु इनसे भी अधिक आश्चर्यजनक घटनाएँ प्रतिदिन सुननेमें आती हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि मन्त्र, तन्त्र, विश्वास आदिसे रोग क्यों और कैसे ठीक हो जाते हैं? भारतीय दर्शनके अनुसार इन सब उपचार-क्रियाओंकी आधारभूत शक्ति 'प्राण'-कहलाती है। मनुष्यके शरीरमें कभी-कभी प्राण कुछ भागोंमें अधिक मात्रामें जाता है और कुछ भागोंमें कम। अर्थात् जब प्राणका संतुलन शरीरमें बिगड़ जाता है, तभी रोग उत्पन्न होता है। अधिक प्राणवाले भागोंसे प्राणको हटाने और कम प्राणवाले भागोंमें प्राणकी पूर्ति करनेसे रोगसे मुक्ति मिलती है। शरीरके विभिन्न अङ्गोंमें प्राणकी कमी या आधिक्यका ज्ञान प्राप्त करना और उसे वाञ्छित स्थानमें भेजकर अवाञ्छनीय स्थानसे हटानेकी क्षमता धीरे-धीरे जिस अभ्यासके द्वारा प्राप्त होती है, उसे 'प्राणायाम' कहते हैं। जब मनुष्य अपनी शक्तियोंको केन्द्रित करता है, तब उसे अपने शरीरमें उपस्थित प्राणपर अधिकार हो जाता है। मन्त्र, तन्त्र, पूजा, ध्यान, भजन आदि समस्त कर्मोंको जब एकाग्रचित्त होकर किया जाता है तो उस समय भी प्राणका समाहरण या संकेन्द्रण होता है। विश्वके सभी महापुरुष अपनी संकल्प-शक्तिके सहारे अपने प्राणको उच्चतम स्पन्दनकी दशामें लाकर उससे अनेक प्रकारके चमत्कार करते थे।

यों तो प्राण-चिकित्साकी अनेक पद्धतियाँ हैं, जिसमें मेस्मरेज्म, हिप्नोटिज्म आदि साधन भी आ जाते हैं। मेस्मरेज्मके आविष्कारक मेस्मरके अनुसार प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें एक विशेष प्रकारका पदार्थ होता है, जिसे वे जन्तु-चुम्बकत्वके नामसे पुकारते थे। उनके अनुसार वह एक शरीरसे दूसरे शरीरमें प्रसारित किया जा सकता है और इसके प्रयोगसे स्नायविक रोगोंमें सीधे और अन्य रोगोंमें परोक्षरूपसे अपार लाभ होता है। उन्होंने घोषित किया था—संसारमें एक स्वास्थ्य, एक रोग और एक उपचार है। (योगकी भाषामें जो प्राण कहा जाता है उसीको मेस्मर 'जन्तु-चुम्बकत्व' कहते थे।) मेस्मरके विचारोंके अनुसार आँखों तथा हाथोंके सहारे यह जन्तु-चुम्बकत्व दूसरे लोगोंके शरीरमें भरा जा सकता है। इसकी कमीसे रोगका उदय और पूर्तिसे रोग-निवारण हो जाता है। अतः हाथों तथा आँखोंकी गुप्त शक्तियोंको जाग्रत् करना इस विधिका मूल सिद्धान्त है।

मेस्मरेज्मके बाद लोगोंने यह मालूम किया कि एकाग्रचित्त होकर दिये गये निर्देशसे भी यह लाभ हो सकता है और यही हिप्नोटिज्मका सिद्धान्त है। आत्म-निर्देशके द्वारा मनुष्य स्वयं अपने आत्मबलको विकसित कर सकता है और जीवनमें अत्यधिक सफलता प्राप्त कर सकता है। आत्मविश्वासमें बहुत बड़ी शक्ति निहित है और वह सफलताकी कुंजी भी कही जा सकती है। आत्मविश्वास न होने या कम होनेपर किसी ऐसे महापुरुष या देवतापर, जिनपर सच्ची श्रद्धा हो, विश्वास रखना भी लाभप्रद होता है। महात्मा गांधीजी अपनेको 'राम' का सेवक कहते थे और प्रतिदिन नियमित रूपसे रामनामका जप तथा नियत समयपर प्रार्थना करते थे। परविश्वास भी आत्म-विश्वासके समान लाभप्रद होता है। श्रीकृष्णपर विश्वासके कारण मीराँ जहर खानेपर भी नहीं मरी और भगवान् विष्णुपर विश्वासके कारण ही प्रह्लादको मारनेके लिये किये गये हिरण्यकशिपुके सारे प्रयास असफल रहे।

यद्यपि योग-साधना सर्वोच्च साधना है, फिर भी उसमें अनेक नियमोंका पालन करना पड़ता है जो साधारण व्यक्तिके लिये बहुत ही कठिन है। साथ ही उसमें अनियमितताके कारण पागलपन या मृत्युतक भी हो सकती है। किसी योग्य गुरुके पास रहकर ही योग-साधना करनी चाहिये। साधारण व्यक्तिके लिये कठोर नियमोंसे मुक्त एवं उपायरहित एक सरल उपायका उल्लेख करना अत्यन्त उपयुक्त समझता हूँ और वह उपाय है—'भगवन्नामका मानसिक जप।' इस लेखके प्रारम्भमें आन्ध्र प्रदेशके जिस महापुरुषका नाम मैंने लिया, वे इसी विधिसे आध्यात्मिक शक्ति संचित करके रोगोपचार आदिमें उसका सफलतापूर्वक प्रयोग कर रहे हैं।

आजकल वे इस नाम-जपको हर समय मन-ही-मन किया करते हैं।

भगवान्‌का कोई-सा भी नाम राम, कृष्ण, राधाकृष्ण, सीताराम इत्यादि—जिसपर श्रद्धा हो, चुन लो और प्रतिदिन प्रारम्भमें एक घंटा प्रातःकालमें और एक घंटा सायंकालमें नियमितरूपसे उस नामका मानसिक जप करो (ओठ और जीभ नहीं हिलना चाहिये)। यदि सुखासन या सिद्धासनमें सीधे बैठकर कर सको तो सबसे अच्छा है, नहीं तो लेटकर भी किया जा सकता है। दैनिक कार्य करते समय भी, अवकाश या विश्रामके समय इसे किया जा सकता है। कुछ वर्षोंतक इसे निष्काम भावनासे करना चाहिये; क्योंकि कामनाओंसे इसके कुछ फलका विनियोग हो जानेसे संचित आध्यात्मिक शक्ति घट जाती है। जप प्रसन्नचित्त होकर करना चाहिये; क्योंकि अप्रसन्नता या खिन्नताका एक नकारात्मक प्रभाव मनपर पड़ता है। बाह्य विकारोंसे विचलित होनेसे बचनेके लिये आँख बंद कर लेना अच्छा है। अपने भीतरकी कामधेनु और कल्पवृक्षको जगानेका प्रयत्न करो (इच्छाशक्ति ही कामधेनु और कल्पनाशक्ति ही कल्पवृक्ष है) मन-ही-मन ऐसी धारणा रक्खें कि हम भगवान्‌के चरणोंके पास बैठे हुए हैं और भगवान् अपनी करुणामयी दृष्टि एवं अभय हस्तसे हमारी सदा रक्षा कर रहे हैं।

महापुरुषोंके सत्संगसे प्राप्त ज्ञानके आधारपर मैं पाठकोंको कुछ सावधान रहनेकी बातें बता देना उचित समझता हूँ—

१—कभी किसीके अहितका चिन्तन नहीं करना चाहिये; क्योंकि अशुभ संकल्पोंसे आध्यात्मिक शक्ति क्षीण होती है।

२—शक्तियोंकी प्राप्तिके लिये अधिक उत्सुकता नहीं रखनी चाहिये और यथासम्भव पवित्र जीवन बिताना चाहिये।

३—कुछ ही क्षण मत्स्यगन्धा नामक युवतीके साथ निषिद्धाचरणके कारण पराशरमुनिकी साठ हजार वर्षोंकी तपस्या भस्मीभूत हो गयी। अतः स्त्रियोंके साथ व्यवहार करते समय अत्यधिक सावधान रहना चाहिये; क्योंकि कहा जाता है—

बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

४—कभी-कभी रोगोपचार-क्रियामें देखा गया है कि रोगी तो ठीक हो जाता है; परंतु वह रोग अपनेको भोगना पड़ता है। जपकी मात्रा बढ़ते रहनेपर यह अप्रिय घटना नहीं होती है या बहुत कम होती है।

५—रोगोपचारका कार्य पैसे या किसी स्वार्थके प्रलोभनमें पड़कर नहीं करना चाहिये; क्योंकि स्वार्थसे मनुष्यकी शक्ति सीमित और निःस्वार्थसे असीम हो जाती है।

६—अपने स्वास्थ्यपर भी बराबर ध्यान देना आवश्यक है और युक्ताहार-विहारसे ही यह सम्भव है। 'यद् भावे तद् भवति।' इस कथनके अनुसार मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही बनता है। नीचे बतायी गयी गहरी श्वासक्रिया एक श्रेष्ठ प्राणवर्द्धक उपाय है।

सीधे खड़े होकर या सीधे बैठकर लंबी श्वास तेजीसे खींचो और तुरंत ही लंबी श्वास तेजीसे छोड़ो। यह क्रिया लगातार ३ या ५ मिनटतक करो। जब फेफड़ोंमें अधिक दबाव-सा मालूम पड़े तो बंद कर दो और यदि कोई विशेष प्रभाव न मालूम पड़े तो यह क्रिया और तेजीसे करो। क्रियाके बाद कुछ देरतक विश्राम करो। श्वास लेते समय कल्पना करो कि विश्वके प्राणभण्डारसे प्राणकी अधिकतम मात्रा भीतर जा रही है और श्वास छोड़ते समय यह कल्पना करो कि प्राण शरीरके कण-कणमें भर रहा है और शरीरके सारे विषैले पदार्थोंका पूर्णतया शरीरसे बहिष्कार हो रहा है।

१९६५ के ग्रीष्मावकाशमें मैं रसायनशास्त्रके ग्रीष्म-विद्यालयमें भाग लेने गया, तो एक दिन लखनऊ विश्व-विद्यालयके समीप स्थित एक यौगिक रोगोपचार-केन्द्र देखनेको चला गया, जहाँ हठयोगकी क्रियाओं, आसनों एवं प्राणायाम-के द्वारा रोगोपचार किया जाता है। एक महिला वहाँ बैठकर गहरी श्वासक्रियाका अभ्यास कर रही थी। पूछनेपर पता चला कि जिस समय वह महिला उपचारके लिये आयी थी, उस समय जहाँ रिक्शा रुकता था, उसी स्थानपर नीचे किसी तरह उतरकर बैठ जाती थी और शरीरमें भारी-पनके कारण दो या चार कदमसे अधिक पैदल नहीं चल पाती थी। गहरी श्वासका अभ्यास करनेके कारण अब वह महिला बिना कष्टके दूरतक भी पैदल चल पा रही है। गहरी श्वासक्रियासे शरीरमें स्फूर्ति आती है।

जब वायु सिरसे पैरकी ओर चलती है तो वह स्वास्थ्य-वर्धक होती है और आयुको बढ़ाती है। इसके विपरीत जब हवा पैरसे सिरकी ओर चलती है तो आयु क्षीण होती है। आयुर्वेदके अनुसार शरीरमें वायुकी अधोगति स्वास्थ्यके लिये लाभप्रद और वायुकी ऊर्ध्वगति हानिप्रद होती है। जब शरीरमें वायु ऊर्ध्वगतिसे दिलकी ओर जाती है तो हृदय-

रोग होकर तुरंत मृत्यु भी हो सकती है। प्राण देनेवाले प्रणवका प्रवेश मनुष्यके सिरमें चोटीके स्थानपर होता है और उसके सूक्ष्म स्पन्दन सारे शरीरमें व्याप्त होकर शरीरको जीवित रखते हैं। अर्थात् प्रणवकी क्रिया सिरसे पैरकी ओर होती है और जब वायु भी सिरसे पैरकी ओर चलती है तो समान स्थिति होनेके कारण प्रणवकी गतिमें वृद्धि होती है। जब वायु पैरसे सिरकी ओर चलती है तो प्रणवकी स्थितिके विपरीत होनेके कारण प्रणवकी गतिको क्षीण कर देती है। इसलिये आयु क्षीण हो जाती है। जब अंगुलियोंको अलग करके सिरके नीचेकी ओर हाथ फेरा जाता है तो सुखकी नींद आती है और ठीक इसके विपरीत हाथ फेरनेसे सोया व्यक्ति भी जग जाता है। हाथ फेरते समय वायुमें कम्पन पैदा होता है। अतः वायु या वायुके कम्पन जब मनुष्यके शरीरमें सिरसे पैरकी ओर अपना प्रभाव डालते हैं तो रोग शान्त होनेमें सहायता मिलती है। समान दशामें काम करनेवाली शक्तियोंका असर जुट जाता है और विपरीत दिशामें काम करनेवाली शक्तियोंका प्रभाव कम हो जाता है।

प्राणसे रोग-निदान करना, उपयुक्त दवाका पता लगाना, उपयुक्त वातावरणका पता लगाना आदि विषयोंपर अगले लेखमें लिखनेका प्रयास करूँगा; क्योंकि वह स्वयं एक बड़ा विषय है। अन्तमें मैं आशा और विश्वास करता हूँ कि पाठकगण भगवन्नामके मानसिक जपके महत्त्वको समझकर अवश्य उसका सदुपयोग करनेमें समर्थ होंगे।

गोरक्षा-आन्दोलन

यह निर्विवाद सत्य है कि भारतकी जनता सम्पूर्ण गोवंशकी हत्या सर्वथा बंद कराना चाहती है—यह उसकी अनिवार्य माँग है, अपने दुराग्रहवश कोई चाहे इस सत्यको न स्वीकार करे। जनताकी इस माँगका प्रत्यक्ष प्रमाण गत १९६६-६७ के गोहत्याविरोधी आन्दोलनके समय मिल चुका है। लाखों-लाखों नर-नारी आन्दोलनमें सम्मिलित हुए, गाँव-गाँवमें सभाएँ हुईं, हजारों-हजारों गोभक्त नर-नारी देशके कोने-कोनेसे केवल विशुद्ध गोरक्षाकी प्रेरणासे दिल्ली आकर सत्याग्रहमें सम्मिलित हुए। भारतके सुदूर प्रान्तोंसे भी गोभक्त आये। वृद्धा माताएँ, नवजात शिशुओंको गोदमें उठाये तरुणी बहनें, बालिकाएँ भी सहर्ष जेल गयीं और इसमें उन्होंने अपना सौभाग्य माना। विगत ७ नवम्बर १९६६ के दिल्लीके कल्पनातीत अभूतपूर्व प्रदर्शनने तो विरोधियोंके हृदयोंको बुरी तरह हिला दिया। विदेशोंके लोगोंपर भी उसका बड़ा प्रभाव पड़ा। सरकारका आसन भी डोला। परंतु दैवदुर्विपाकसे कुछ लोगोंके षड्यन्त्रका कुचक्र सफल हो गया। गुंडोंने उपद्रव किये। निरीह प्रदर्शनकारियोंपर अश्रुगैसके गोलोंके साथ ही निर्दयतासे गोलियाँ चलायी गयीं। कितने लोग हताहत हुए, पता नहीं; पर जोश ठंढा नहीं हुआ। आन्दोलन जारी रहा। अनशन आरम्भ हुए। जनतन्त्र माननेवाली सरकारने जनतन्त्रके पवित्र सिद्धान्तको तो माना ही नहीं, नहीं तो, उसे उसी समय गोवंशकी हत्यापर पूर्ण प्रतिबन्धकी घोषणा कर देनी चाहिये थी, इसके विपरीत सरकारी तत्त्वोंने तरह-तरहके हथकंडोंके द्वारा आन्दोलनको असफल बनानेके प्रयत्न आरम्भ कर दिये!

आन्दोलनमें नेताओंमें मतभेद उत्पन्न होने लगा। पदोंके लिये भीतर-ही-भीतर कुछ वैमनस्य जगा, मनोंमें परस्परविरोधी विचार आये। अन्तमें सरकारने एक 'गोरक्षा-समिति'का प्रस्ताव किया और यह विश्वास दिलाया और कहा गया कि केन्द्रीय सरकारके द्वारा गठित यह 'गोरक्षा-समिति' सम्पूर्ण गोवंश-वध-निषेध-कानूनके मार्गमें आनेवाली कठिनाइयोंपर विचार करके उन कठिनाइयोंको दूर करनेका मार्ग सुझायेगी, अतः आन्दोलन बंद कर दिया जाय। उस समय बीचवालोंके द्वारा ऐसी बात भी आयी थी कि सात नवम्बरकी घटनाको लेकर या उसके पहले-पीछे जिन गोभक्त नर-नारियोंपर मुकदमे चलाये गये हैं, वे सब भी वापस ले लिये जायँगे। सबको छोड़ दिया जायगा।

यद्यपि उस समय कुछ सज्जनोंने सरकारके इस 'समिति'-निर्माणको धोखेकी चीज ही समझा था और प्रकारान्तरसे यह सुझाया भी गया था परंतु सरकारकी बातका उपर्युक्त अर्थ समझकर और उसके आश्वासनपर विश्वास करके आन्दोलन बंद कर दिया गया और 'सर्वदलीय गोरक्षा समिति'ने अपने सदस्य भी सरकारी गोरक्षा-समितिमें चुनकर भेज दिये।

मुकदमे ज्यों-के-त्यों चलते रहे, अब भी चल रहे हैं। इधर 'गोरक्षा-समिति'में बड़ा लंबा समय बीत जानेपर भी

कुछ हुआ नहीं और ऐसे विशेषज्ञों (!) की गवाहियाँ होती रहीं, जिन्होंने पूर्ण गोवंश-वध-निषेध कानूनके मार्गमें आनेवाली कठिनाइयोंके दूर करनेकी बात तो अलग रही, पूर्ण 'गोवंश-वध-निषेध'को भी नहीं माना। वरं कुछने तो प्रकारान्तरसे विरुद्ध मत दिया और पिछले दिनों जब श्रद्धेय जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी पुरी आदि महानुभावोंके द्वारा यह बात कही गयी कि यह समिति सम्पूर्ण गोवंशवधनिषेध कानूनके निर्माणमें आनेवाली कठिनाइयोंको दूर करनेका सुझाव देनेके लिये बनी है, फिर इसमें दूसरी बातें क्यों पूछी-कही जाती हैं ? तो इसपर गतिरोध हो गया और अब अन्तमें हालकी समितिकी बैठकमें समितिने दोके विरुद्ध नौ मतोंसे यह निर्णय कर दिया कि समिति 'पूर्णनिषेध' 'आंशिक निषेध' या 'अनिषेध' सभी विषयोंपर विचार करेगी।

समितिका यह निर्णय वस्तुतः आरम्भमें दिये हुए आश्वासनोंसे सर्वथा विरुद्ध है। इस स्थितिमें, सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियान-समितिके सदस्योंका इसके सदस्यरूपमें रहना सम्भव नहीं और न इस समितिसे कोई अनुकूल आशा ही रक्खी जा सकती है; क्योंकि सरकारका रुख ही विपरीत मालूम होता है। इसीसे सम्पूर्ण गोवंशवध-निषेध कानूनके लिये उपाय बतानेके लिये निर्मित सरकारकी 'गोरक्षा-समिति' इस दुःस्थितिपर पहुँची है !

अब तो अर्थविशेषज्ञोंने यह मत दिया है कि यदि भारतमें गोवध न करना हो तो गौका निर्यात करना चाहिये, जिससे विदेशी मुद्रा मिल सके। यह अर्थपैशाचिक वृत्तिका आसुरी मत है। यद्यपि गौ आर्थिक दृष्टिसे भी लाभदायक है, कदापि हानिकारक नहीं, बशर्ते कि उसका संरक्षण, पालन, संवर्द्धन उचित रूपमें सावधानीके साथ किया जाय। पिछले दिनों यह समाचार छपा था कि १५-१६ वर्षोंसे देशमें जो दुग्ध-प्रतियोगिताएँ होती रही हैं, उनमें गायको ७५ पौंड, ६२ पौंड और ५२ पौंड दूध देनेका पुरस्कार मिला है और भैंस अभीतक ४९ पौंडसे अधिक दूध नहीं दे सकी है। गौकी यदि सावधानीके साथ सेवा-शुश्रूषा की जाय और खानेको अच्छी संतुलित खूराक दी जाय तो भारतकी गाय एक मनतक दूध दे सकती है। बंबईकी 'दुग्ध कालोनी'में हजारों भैंसें हैं। उनके साथ तीन-चार वर्ष पूर्व परीक्षणके लिये कुछ गायें रक्खी गयीं और सरकारी प्रबन्धमें उनके पालन-पोषणकी व्यवस्था की गयी तो उन गौओंने सभी प्रकारसे भैंसोंके मुकाबलेमें अधिक प्रगति दिखलायी और उनसे बड़ा मुनाफा रहा। पर हमारे ये विशेषज्ञ तो अपना मस्तिष्क विदेशी विशेषज्ञोंके मस्तिष्कको समर्पित कर चुके हैं। जो कुछ उनसे सीखा है, वही कहते हैं। इनका दोष भी क्या है ? और सरकार भी बेचारी क्या करे ? उसे विशेषज्ञोंकी सम्मति माननी ही है। हमारा दुर्भाग्य है !

मेरी समझसे—यदि गोवंशकी हत्यापर कानूनसे पूर्ण प्रतिबन्ध लग जाय, तो बूढ़ी अपाहिजके नामपर दूधवाली जवान गायोंका कटना तुरंत बंद हो जायगा। फिर स्थान-स्थानपर गोसदनोंकी स्थापना की जाय, जिनमें अपाहिज गोवंशकी जीवन-रक्षाका अलग प्रबन्ध हो और उनके गोबर आदिसे अर्थ कमाया जाय, साथ ही खेती की जाय तो उसमें कदापि घाटा नहीं होगा।

पर हमारी सरकार तो विभिन्न साधनोंसे मांसाहारके प्रचारमें लगी है। साहित्य प्रकाशित किया जा रहा है, स्थान-स्थानपर बड़े-बड़े 'हत्यालय' (कसाईखाने) खोले जा रहे हैं, इस अवस्थामें वह तो गोरक्षार्थ 'गोसदन' क्यों खोलने लगी। विदेशी विशेषज्ञोंकी सम्मतिके अनुसार विदेशोंसे ऋण लेकर करोड़ों-अरबों रुपये लगाकर उर्वरक (नकली खादके) कारखाने खोल रही है। करोड़ों रुपयेका उर्वरक विदेशोंसे आयात करने जा रही है। जब कि विदेशी वनस्पति विशेषज्ञोंका ही यह कहना है कि नकली खादसे कुछ वर्षोंतक तो अन्न अधिक उत्पन्न होता है, पर आगे चलकर उस जमीनका रस समूल सूख जाता है, जिससे वह बिल्कुल ऊसर—कुछ भी न पैदा करनेवाली बन जाती है। साथ ही नकली खादसे अन्न-बीजका प्राकृतिक रूप नष्ट होकर वह विकृत हो जाता है, जिससे 'कैंसर' की बीमारी पैदा होती और फैलती है। जहाँ-जहाँ अप्राकृत खादका प्रयोग किया गया, वहाँ-वहाँ 'कैन्सर' रोग पैदा हो गया, जब कि पहले वहाँ कैन्सरका नाम भी लोग नहीं जानते थे।

इधर प्रचुर गोबर व्यर्थ जा रहा है, यह बताया गया है कि देशमें प्रतिवर्ष एक अरब, सत्रह करोड़, अस्सी लाख (११७८०००००) टन गोबर उपलब्ध है* और गोवध

* जो दर्जनों उर्वरक कारखानोंकी वार्षिक उत्पादन-क्षमताके बराबर है।

सर्वथा बंद होनेसे वह और भी बढ़ सकता है। इसका खादके रूपमें उपयोग किया जाय तो भूमि पवित्र होनेके साथ अत्यन्त उर्वरा बन सकती है और आवश्यकतासे भी अधिक अन्न उत्पन्न हो सकता है। पर इधर सरकारका ध्यान ही नहीं है। विदेशी मुद्राके लिये वह चमड़ा, गोमांस आदिके निर्यातमें कमी न आ जाय—इस कारण गोवध जारी रखना चाहती है, पर उर्वरकके आयातमें कितनी विदेशी मुद्रा देनी पड़ेगी, इसका विचार नहीं है। क्या कहा जाय—तामसी बुद्धिमें सब कुछ उलटा ही निर्णय हुआ करता है। पर यदि इस ओर ठीक ध्यान देकर उचित व्यवस्था की जायगी तो गोबर-गोमूत्र आदिसे बहुत बड़ी आमदनी हो जायगी। साथ ही गायोंका नस्ल-सुधार होगी, दूधकी प्रचुर मात्रा बढ़ेगी, मजबूत साँड़ और बैल पैदा होंगे तो देश मालामाल हो जायगा। मेरी प्रार्थना है कि ऐसे गोपालन-गोसंवर्धनके कार्य तो अभीसे ही शुरू हो जाने चाहिये।

अच्छे परिश्रमी तथा त्यागी बुद्धिमान् गोसेवक कार्यकर्ता गोपालनके लिये सेवादान और धनी धन-दान देकर जगह-जगह ऐसी उपयोगी गोपालन, गोसंवर्धनकी संस्थाएँ खोलें। यह बहुत आवश्यक है।

साथ ही गोचरभूमियाँ जो हड़प ली गयी हैं, वे छुड़ानी चाहिये और नयी गोचर-भूमियाँ छुड़वानी चाहिये। प्रत्येक गाँवके साथ कुछ गोचरभूमि होनी चाहिये। पर गोवंशकी हत्याका पूर्ण निषेध कानूनके द्वारा अवश्य होना चाहिये।

पिछले आन्दोलनमें सरकारका आसन डोला था; इस समय वह बात नहीं है। पर यदि व्यवस्था तथा उत्साहपूर्वक कार्य किया जाय तो फिर उससे भी अच्छी स्थिति हो सकती है; क्योंकि जनताका रुख तो साथ है ही। इसके लिये भलीभाँति सोच-विचारकर मार्ग निश्चित करना होगा। आन्दोलन हो तो ऐसा हो जिससे सरकारको झुकना पड़े। पर इसके लिये बहुत जल्दी न करके गम्भीर विचार करनेकी आवश्यकता है।

सब लोग एक मनसे लगें, पूर्ण गोरक्षा होनी चाहिये,—एकमात्र यही लक्ष्य हो; परस्पर सच्चा सहयोग, विश्वास तथा सद्भाव हो, नामकी अपेक्षा कामपर अधिक मन हो। त्यागभावना हो। छोटी या बड़ी बातोंको लेकर जो परस्परका मतभेद है, उसे इस क्षेत्रमें सर्वथा भुला दिया जाय। किसीकी भी कटु आलोचना न की जाय तथा सबसे यथासाध्य सहायता तथा सहयोग प्राप्त करनेका प्रयत्न किया जाय। आन्दोलनको राजनीतिसे सर्वथा पृथक् रक्खा जाय। सत्याग्रह एक जगह या कसाईखानोंपर बहुत जगह हों, जहाँ उसकी व्यवस्था हो सके। विधान-सभा तथा संसद्के सदस्योंको सम्पूर्ण गोरक्षा-कानूनके पक्षमें तैयार किया जाय और सत्याग्रहियोंकी सूची बनायी जाय। और भी बहुत-सी बातें हैं, जिनपर विचार करनेके लिये मेरी अपने उन सभी श्रद्धेय तथा सम्मान्य महानुभावोंसे विनीत प्रार्थना है जो सक्रिय रूपसे आन्दोलनका संचालन करते हैं।

गोरक्षाके लिये अनुकूल वातावरण तैयार हो, लोगोंकी भावना विशुद्ध हो, इसके लिये गत आन्दोलनके समय जैसे किये-कराये गये थे, उसी प्रकार स्थान-स्थानपर वैदिक यज्ञ, गायत्री-अनुष्ठान, भगवन्नाम-जप, विष्णुसहस्रनामके पाठ, देवी-अनुष्ठान, चण्डीपाठ, रुद्राभिषेक तथा अपने-अपने धर्मानुसार प्रार्थनाएँ की जायँ।

यह समाचार मिला है कि पूर्व पाकिस्तानमें भारतकी सीमाके अति निकट ही एक गोमांसका बड़ा कारखाना खोला गया है, जिसके द्वारा गोमांसका निर्यात होगा। वहाँ गौएँ बहुत कम हैं। ऐसा मालूम हुआ है कि भारतसे वहाँ गौएँ कटनेके लिये मँगवायी जाती हैं। अतएव बहुत सावधानी रखकर गौओंकी निकासी चोरी-छिपे भी न हो, इसकी पूरी व्यवस्था सरकारको तथा गोरक्षा चाहनेवाली जनताको करनी चाहिये।

जिनको कुछ जानना-पूछना हो, वे 'मन्त्री, सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति' २९। ११ शक्तिनगर, दिल्ली ७ पतेपर पत्र-व्यवहार करें। 'महाभियान समिति-कार्यालय' आजकल वहीं है।

गांधीजी और गोरक्षा

['गांधीजी और गोरक्षा' नामक पुस्तकपर श्रीजयदयालजी डालमियाने कुछ विचार प्रकट किये हैं, उन्हींको नीचे कुछ न्यूनाधिक रूपमें, कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन करके दिया जाता है।—सम्पादक]

पिछले दिनों भारत सरकारके 'सूचना और प्रसारण मन्त्रालयके प्रकाशन विभाग' द्वारा हिंदीमें एक छोटी-सी पुस्तक 'गांधीजी और गोरक्षा' (Gandhiji on Cow Protection अंग्रेजीमें) प्रकाशित की गयी है। पता नहीं इसकी कितनी प्रतियाँ प्रकाशित की गयी थीं। पर इसके भीतर-के मुखपृष्ठकी पीठपर लिखा है—'यह पुस्तक बिक्रीके लिये नहीं है।' इससे स्पष्ट है कि इसे मुफ्त वितरण किया गया है। गोवधनिरोधके प्रश्नपर विचार करनेके लिये नियुक्त की गयी समितिके अवसरपर सरकारद्वारा इसके प्रकाशन और बिना मूल्य वितरणका उद्देश्य यही हो सकता है कि जनता इस सम्बन्धके महात्माजीके विचारोंको जान लें। इसमें महात्माजीके चुने हुए वाक्य उद्धृत किये गये हैं, पर कुछ ऐसे वचन इस ढंगसे दिये हैं, जिनसे ऐसा अनुमान होता है कि इसके प्रकाशन और वितरणका प्रधान उद्देश्य यह बतलाना ही हो कि महात्माजीके विचार 'पूर्ण गोवध-निरोध' कानूनके अनुकूल नहीं थे। कुछ देरके लिये यह मान लें कि किसी समय महात्माजीने ऐसे शब्द कहे हों, जिनका अर्थ यह लगाया जाय कि वे 'पूर्ण गोवधनिषेध' नहीं चाहते थे तो इससे यह कभी नहीं माना जा सकता कि महात्माजी गोवधके पक्षपाती थे और इसलिये पूर्ण 'गोवध-निरोध' कानून नहीं बनना चाहिये। महात्माजीने तो देशके विभाजनके विरुद्ध बड़े कड़े शब्दोंमें अपने विचार प्रकट किये थे। पर आखिर 'देश-विभाजन'-जैसा पाप भी हो गया। फिर यहाँ तो स्थिति उसके सर्वथा विपरीत है। महात्माजीको निमित्त बनाकर पूर्ण गोवधनिरोध-कानूनका विरोध करना पाप है। भारतके लिये 'पूर्ण गोवध-निषेध' कानूनकी तुरंत अनिवार्य आवश्यकता है। किसी भी मत या वाक्यविशेषसे इस आवश्यकताका निराकरण नहीं हो सकता।

जनता भ्रममें न पड़े इसलिये यहाँ, पहले महात्माजीके उन वचनोंपर विचार किया जाता है, जिनको सरकार किसी-न-किसी प्रकार अपनी गोवध जारी रखनेकी वर्तमान दुराग्रहपूर्ण नीतिके पक्षमें समझती है। उन वचनोंके साथ ही पूर्वापरके वचनोंपर भी विचार किया जाता है।

'गांधीजी और गोरक्षा', पृष्ठ ४—हरिजन, १९-२-१९३८ का उद्धरण—

'…आखिर कसाईको भी अपना धन्धा करना है…'

'…हम आर्थिक दृष्टिसे गौको कसाईके हाथ बेचना अनावश्यक और असम्भव बना दें।'

उपर्युक्त महात्माजीके वचनोंके सम्बन्धमें यह नम्र निवेदन है कि जबतक यह पूरा प्रबन्ध न देखा जाय और जिस समय महात्माजीने ये वाक्य लिखे, उस समय देशकी और हिंदू-मुसल्मानोंके परस्पर सम्बन्धकी क्या परिस्थिति थी, इसको न समझा जाय, तबतक इसका ठीक आशय समझना कठिन है। सम्भव है, हिंदू-मुसल्मानोंके बीच कोई दंगा-फसाद हुआ हो और गोवधकी बातको लेकर कहींपर हिंदुओंद्वारा कसाई पीटे गये हों।

कसाईगिरीका धन्धा जो क्रूरता और हिंसासे भरपूर है कभी भी सत्य और अहिंसाके पुजारी महात्माजीको मान्य नहीं हो सकता। आज भी, आधुनिक विज्ञानकी इतनी प्रगति होनेपर भी, भारतवर्षमें कसाईगिरीमें जिस निर्दयता और क्रूरतासे काम लिया जा रहा है, उसका दृश्य यदि दयार्द्रहृदय महात्माजीके सामने होता तो वे कसाईगिरीके इस क्रूर धन्धेको जल्दी-से-जल्दी समाप्त करवाकर रहते, भले ही उसके लिये उन्हें कितना ही त्याग क्यों न करना पड़ता और कितना भी कष्ट क्यों न झेलना पड़ता। कसाईगिरीके धन्धेकी क्रूरताके सरकारी रिपोर्टमें लिखे गये कुछ नमूने देखिये—

(क) 'खादीग्रामोद्योग' जिल्द १२, संख्या ८, मई १९६६, पृष्ठ ५७१-५७२ से उद्धृत—

'जानवरके प्रति मानवके द्वारा दिये गये अनावश्यक कष्टका विचार करना भी कष्टदायक है। फिर भी हमारा इस ओर ध्यान भी नहीं जाता कि ये गूँगे पशु अपने दुःख और कष्टको व्यक्त करनेमें असमर्थ हैं। हम जीव-हत्या करते हैं और वह भी अक्सर तमाशेके लिये। हम इसका विचार किये बिना कि उनको कितना कष्ट होता होगा, उनके बच्चोंको ले जाते हैं और उनकी निर्दयतापूर्वक उनके

देखते हुए ही अपने खेल (स्पोर्ट्स) के लिये हत्या कर डालते हैं। बछड़ोंका रक्त धीरे-धीरे बहाया जाता है जिससे कि उनका सफेद मांस मिल सके। गायक चिड़ियोंको जान-बूझकर इसलिये अन्धा बना दिया जाता है कि वे अच्छी तरह गावें। साँप और बड़ी छिपकलियोंका चमड़ा जीते-जी उधेड़ा जाता है जिससे कि चमड़ेमें कोई दोष (फ्ला) न रहने पावे।

हमारे यहाँके पशुओंको कतल किये जानेके पूर्व वर्णनातीत कष्ट और अत्याचार सहन करना पड़ता है। यह सर्वविदित है कि जिन पशुओंका उपयोग नहीं है, उन्हें कसाईखानेके दुःखद मार्गपर जाना पड़ता है। उनको बड़े कष्टदायक तरीकेसे रस्सीसे बाँधा जाता है और कतलके स्थानपर घसीटकर ले जाया जाता है। पिछले दोनों पैर और अगले दोनों पैर मजबूतीसे बाँध दिये जाते हैं और अति शीघ्रतासे गर्दन मरोड़कर सिर घुमा दिया जाता है जिससे पशु अपना संतुलन खोकर गिर पड़ता है। इसके उपरान्त उस पशुको क्रूरतापूर्वक काटकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं और यह कार्य दूसरे काटे जानेवाले पशुओंकी दृष्टिके सामने होता है।'

(ख) भारत सरकारके खाद्य और कृषि-मन्त्रालय-द्वारा प्रकाशित 'भारतमें मांस-विक्रय' (मार्केटिंग आफ मीट इन इण्डिया) की रिपोर्ट, १९५६ के संस्करणसे अनूदित—

पृष्ठ ७८—

'खाये जानेवाले विभिन्न पशुओंके शरीरके आकारके अन्तरके कारण उनके कतल करनेके तरीके भी थोड़े भिन्न-भिन्न हैं। लेकिन साधारणतया गर्दन काटनेका तरीका एक ही है। जिसमें तेज छुरेसे गर्दन इतनेतक काटी जाती है जिसमें ग्रीवाशिरा (जुगुलर वेन) और रक्तके प्रवाहकी अन्य नलियाँ कट जायँ और रक्त निकलकर पशु मर जायँ। छूरेसे गर्दनकी कटाई इतनी चतुराईसे की जाती है जिससे कि गर्दन रक्तसे लथपथ न हो और रक्त श्वासनली (ट्रचिआ) और ग्रासनली (एसोफगस) से वापस चला जाय।

गाय-बैल—इन पशुओंको रस्सीसे जकड़कर, मजबूतीसे सिर और सींग पकड़कर अचानक झटका देकर जोरसे जमीनपर गिरा दिया जाता है। पशुकी गर्दन खींची जाती है और गर्दनकी बड़ी नलियाँ १२ इंच लंबे तेज छूरेसे काट दी जाती हैं। पशुका रक्त यथासम्भव शीघ्रता और तेजीके साथ निकाल लिया जाता है। पशुके शरीरकी ऐंठन-क्रिया (कन्वलसिव मूवमेंट) शरीरसे आसानीसे रक्त निकलनेमें सहायक होती है और इससे मांसकी अधिक समयतक टिकने (कीपिंग) की क्वालिटी अच्छी हो जाती है। इस तरीकेसे पशुपर बड़ी क्रूरता होती है और उसको छटपटाहट भी बहुत होती है।

भेड़-बकरी—इनकी टाँगें नहीं बाँधी जातीं। लेकिन तेज मरोड़के साथ पशु जमीनपर गिरा दिया जाता है। बायीं करवट गिरे हुए पशुके कानके नीचे और पीछे तेज छुरा चला दिया जाता है। ग्रीवाशिरा (जुगुलर वेन) काट दी जाती है और सिर पीछेकी ओर झटककर गर्दन तोड़ दी जाती है। पूरा रक्त निकल जानेके बाद सिर काट दिया जाता है। गर्दनका चमड़ा अलग कर दिया जाता है और पैर काट दिये जाते हैं।

सूअर—गाय, बैल आदि पशुओंकी कतलसे सूअरकी कतलका तरीका थोड़ा भिन्न है। सूअरको जमीनपर गिराकर उसके थूँथनको छोटी रस्सीसे बाँध दिया जाता है जिससे कि वह मुँहसे काट न सके और उसका सिर जमीनके साथ दबाकर रक्खा जा सके। इसके बाद कुछ गोलाकार तेज नोकके ८ इंच लंबे छुरेसे स्टर्नम (वह हड्डी जो गर्दनसे पेटकी ओर जाती है और जिसमें पसलियाँ जुड़ी रहती हैं) के अग्रभागमें ३॥ इंच लंबा-सीधा साफ कट लगाया जाता है जिससे ग्रीवाशिरा (जुगुलर वेन) कट जाती है और तेजीसे रक्त निकलने लगता है। यह कट इतना गहरा होता है कि चर्बीके भीतरसे पार हो जाता है जिसमेंसे वह गोलाकार नोकवाला ८"इंचका छुरा गलेकी मारफत अंदर घुसेड़कर हृदयको छेद दिया जाता है।'

(ग) भारत सरकारके खाद्य और कृषि मन्त्रालय-द्वारा प्रकाशित पशुओंके प्रति निर्दयता रोकनेके लिये कमेटीकी रिपोर्ट, १९५७ के संस्करणसे अनूदित—

पृष्ठ ५५-५६—

'टंगरा (कलकत्ता) की कारपोरेशनद्वारा संचालित तीन कसाईखाने (१) सूअर, (२) गाय-बैल, पशु और (३) भेड़-बकरियोंके लिये हैं।

(१) सूअरोंको कसाईखानेके मुख्य हालमें लाकर जबरदस्ती लेटा दिया गया। इस क्रियामें आपसका संघर्ष,

नोकदार चीजके चुभनेसे दर्दकी चीख और चिल्लाना होता रहता है। इसके बाद लगभग वही क्रिया बरती गयी जो सूअरोंकी कतलके सम्बन्धमें ऊपर वर्णन की जा चुकी है।

(२) पशुओंको समूहमें कसाईखानेके हालमें लाया गया और दूसरे काटे जानेवाले पशुओंके देखते हुए एक-एकको लेटनेको बाध्य किया गया और हलालके तरीकेसे कतल किया गया। हमलोगोंने देखा कि तेज छुरेको एक ही बार चलाकर धड़से गर्दन आधी काट दी गयी। काटनेके पूर्व गर्दनको एक तरफ मरोड़ दिया गया जिससे कि उसको मजबूतीके साथ पकड़े रक्खा जा सके। रक्तकी मुख्य नली, श्वासनली और खाद्य नलीको काटनेकी क्रियामें लगभग आधा मिनट लगा होगा। ऐसा प्रतीत होता था कि यह सब कार्य पूर्ण होते-होते पशुओंने अपनी संज्ञा और कष्ट अनुभव करनेकी शक्ति खो दी थी।

(३) इसी प्रकार भेड़-बकरियाँ भी काटी जाती थीं।

बम्बई कारपोरेशनका एक मुख्य कसाईखाना, जिसमें ३०० पशु नित्य काटे जा सकते थे, बाँदरामें अवस्थित है। कसाईखानेके प्रमुख हालके बाहर एक प्रतीक्षा (वेटिंग) हाल है, जहाँसे पशुओंका समूह प्रमुख हालमें लाया जाता था और कतल होनेवाले अन्य पशुओंकी दृष्टिके सामने एक-एक करके उनका कतल होता है। कमेटीको यह बताया गया कि काटे जानेवाले पशुओंको कतलके स्थानपर लानेको कई बार तो उनके सजातीय कटे हुए और हुक (खूँटी) में लटके हुए और रक्त चूते हुए पशुओंके नीचेसे लाया जाता है और जगहकी कमी होनेके कारण गर्दनके अपूर्ण कटी हुई हालतमें उनको ढेरमें फेंक दिया जाता है। प्रायः ऐसा देखनेमें आता है कि ढेरमें पड़े हुए पशुओंकी निकली हुई पिछली टाँगें हवामें छटपटाती रहती हैं। यह कहा जा सकता है कि ऐसी अवस्थामें पशुओंको कष्ट अनुभव करनेकी संज्ञा नहीं रहती; लेकिन दृश्य बड़ा दर्दनाक होता है।

पृष्ठ ४७—

अक्सर जवान पशु अपने बच्चोंके साथ हाँककर लाये जाते हैं जो बड़ा ही करुण दृश्य होता है। कमेटीको यह बताया गया है कि कसाई लोग अक्सर जान-बूझकर पशुओं-को कसाईखानेमें ले आते समय भूखों मारते हैं और उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं जिससे कि वे कसाईखाने पहुँचते-पहुँचते ऐसे लगने लगें कि इन्सपेक्टिंग आफिसरद्वारा वे कतलके लिये पास कर दिये जायँ।

(घ) एम्० एन्० कुरेशी बनाम बिहार सरकारके केसमें सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) का निरीक्षण—

पैरा ४२ का उद्धरण—

'ऐसे उदाहरणोंकी कमी नहीं है, जिनमें जानवरोंको कतल करनेके लिये, पास करवानेके लिये उनके दाँतोंको अथवा उनकी सींगके चारों तरफकी रिंगको इस प्रकारसे तोड़ और बिगाड़ दिया जाता है जिससे कि इन्सपेक्टरके द्वारा वे पशु कतलके लिये पास कर दिये जायँ। जिन गायोंका कतल इन्सपेक्टर अस्वीकृत कर देते हैं, उन्हें शहरोंकी सीमासे दूर ले जाया जाता है और उनका कतल देहातोंमें किया जाता है; क्योंकि कतल केवल रजिस्टर्ड वधशालाओंतक ही सीमित नहीं है। इसलिये जो उपयोगी पशु कतल किये जाते हैं, उनकी निश्चित संख्या बतायी नहीं जा सकती है।'

(ङ) 'आर्योदय' साप्ताहिक, नयी दिल्लीके दिनाङ्क १९-५-१९६८ के अङ्कमें प्रकाशित प्रो० श्यामरावके बयानसे उद्धृत—

'दिल्लीसे सत्रहवें मीलपर जी. टी. रोडपर यह बूचड़-खाना एसेक्स फार्म्स (प्रा०) लिमिटेडके नामसे बना है। इसके मुख्य मालिक दिल्ली-निवासी रामनाथ गोयल हैं।

दिल्लीकी ओरसे तीन बंद विशाल ट्रकोंमें यहाँ बकरे, बकरियाँ, भेंड़, सूअर आदि पशु लाये जाते हैं। एक बड़े कमरेमें उन्हें ठूँसकर भर दिया जाता है। मौतकी सूचना पशुओंसे छिपी नहीं रहती और वे अत्यन्त भयभीत काँपती हुई दीवालसे चिपटी खड़ी रहती हैं। उनके निकलनेका एक छोटा दरवाजा होता है। अंदरसे कोंचकर तीन-चार जानवर एक बारमें निकाले जाते हैं। एक व्यक्ति बिजली-का बड़ा-सा चिमटा लिये तैयार रहता है—सूअरोंके कानपर वह जोरसे दबाकर उन्हें मूर्च्छित कर देता है ताकि उनपर अच्छी तरह काबू पाकर उन्हें आसानीसे वध किया जा सके। जानवर बुरी तरह चिल्लाता और छटपटाता है—अन्य पशु भी जोरोंसे चीत्कार करते हैं, पर बिजलीके चिमटेसे बेहोश पशुको पिछले पैरोंमें काँटा लगाकर उल्टा टाँगकर यन्त्रोंकी सहायतासे एक कुण्डके ऊपर लाया जाता है। वहाँ तीसरा व्यक्ति एक लंबी छुरीसे सूअरके कण्ठको चीरकर बाल्टीमें रक्त इकट्ठा कर लेता है।

उस जानवरको एक गरम खौलते हुए पानीके कुण्डमें

उतार देते हैं जिससे उसके रोयें आदि नरम पड़ जायँ। पाँच-सात मिनट बाद चाकूसे उसके बदनको खरोंचकर साफ कर लिया जाता है। यहाँतक तो जानवरके अंदर प्राण होते हैं, छटपटाते रहते हैं। फिर उसका सिर काटकर अन्यत्र रक्खा जाता है और फिर उसका पेट काटकर अँतड़ियों-को निकालकर उसके शरीरकी बोटियाँ बनायी जाती हैं। मैंने जीवनमें पहली बार किसी पशुको कटते देखा था। इस क्रूरताके नग्न प्रदर्शनके बीभत्स दृश्यको देखते हुए कै-सी आने लगी, पर मनको बहुत कड़ा करके प्रत्येक प्रक्रियाको ध्यानसे देखता रहा।*

महात्माजीने कसाइयोंके धन्धेके सम्बन्धमें उपर्युक्त वाक्य सन् १९३८में लिखे थे, जिस वक्त कि ब्रिटिश राज्य था। मेरा अनुमान है कि यदि महात्माजीको इस धन्धेकी भीषण क्रूरताका पूर्ण परिचय होता तो वे इस बातकी भरपूर चेष्टा करते कि कसाइयोंको कोई दूसरा व्यवसाय मिल जाय और वे क्रूरतापूर्ण इस कुत्सित धन्धेसे छुटकारा पा सकें। आखिर व्यवसाय पेट भरनेके लिये ही किया जाता है। जो व्यवसाय इतना घोर क्रूरतापूर्ण, सर्वथा घृणित हो तथा जन-समुदायके लिये हानिकारक हो उसको जान-बूझकर महात्माजी भी कभी प्रोत्साहन नहीं दे सकते थे।

'गांधीजी और गोरक्षा' के पृष्ठ ५ में महात्माजीका 'यंग इण्डिया' ६–१०–१९२१ का एक उद्धरण है, जिसमें उन्होंने लिखा है—'पशुओंकी पुकार इस कारण भी सुननी चाहिये कि ये बेजुबान हैं।' आगे लिखते हैं—'पशुओंपर निर्दयता दिखाते ही हम भगवान् और हिंदुत्वसे विमुख हो जाते हैं।'

कसाइयोंका व्यवसाय शराब बेचनेवालोंके व्यवसायसे कहीं अधिक घृणित है, फिर भी इस बुरी आदतकी शिकार बनी हुई जनताको उससे मुक्त करनेके लिये शराब बेचने-वालोंके व्यवसायको महात्माजीके आन्दोलनके द्वारा काफी आघात पहुँचानेमें कोई आनाकानी नहीं की गयी। अन्तर इतना ही था कि उस व्यवसायमें अधिकतर हिंदू थे और इस व्यवसायमें अधिकतर मुसल्मान हैं। यदि आजकी परिस्थिति होती कि जिसमें शासन हमारा अपना है तो मुझे पूरा विश्वास है कि महात्माजी पूरे आग्रहके साथ सरकारके द्वारा कसाइयोंके लिये किसी दूसरे व्यवसायका प्रबन्ध करवा देते और उनको इस घृणित व्यवसायसे मुक्ति दिलवा देते। यदि शासन सीधी तरहसे उनकी बात न मानता तो सम्भव है कि महात्माजी अपने अन्तिम अस्त्र 'अनशन' का उपयोग भी इसके लिये करते।

यह तो हुई कसाइयोंके साधारण व्यवसायकी बात, जिसमें सभी जानवरोंकी हिंसा होती है। गोवधके सम्बन्धमें तो महात्माजी मुसल्मानोंके साथ कोई ऐसा भी समझौता करनेको राजी नहीं हुए जिसमें गोवधकी छूट दी जाय। इस सम्बन्धमें श्रीकाकासाहब कालेलकरके द्वारा लिखित पुस्तक 'बापूकी झाँकियाँ' में संस्मरण-संख्या ७९ जो पृष्ठ-संख्या ९८ पर दिया है, उसे देखा जाय। स्वराज्य-प्राप्तिके लिये महात्माजी मुसल्मानोंकी सब शर्तें माननेको तैयार थे और उनको सब प्रकारकी छूट देनेके लिये भी प्रस्तुत थे, किंतु गोवधकी छूट उन्होंने कभी स्वीकार नहीं की है।

उपर्युक्त संस्मरणके अनुसार एक मसविदा उनके सामने रक्खा गया था, जिसमें मुसल्मानोंने गोवधकी छूट चाही थी और उस मसविदेको तैयार करके उनको दिखाया गया तो महात्माजीने कह दिया कि 'किसी भी शर्तपर हिंदू-मुस्लिम समझौता हो जाय तो वह मंजूर है—उनको उसमें क्या देखना है।' फिर भी मसविदा जब बापूको दिखाया गया तो उन्होंने सरसरी निगाहसे देखकर कह दिया—'ठीक है।' रातमें सोये-सोये उन्हें यह बात ध्यानमें आयी कि 'बड़ी गलती हो गयी। कल शामको मसविदा ध्यानसे नहीं पढ़ा और यों ही कह दिया कि ठीक है। उसमें तो मुसल्मानोंको गोवध करनेकी इजाजत दी गयी है और हमारा गोरक्षाका सवाल यों ही छोड़ दिया गया है।' महात्माजीने कहा—'यह मुझसे बरदाश्त कैसे होगा? मैं तो स्वराज्यके लिये भी गोरक्षाका आदर्श नहीं छोड़ सकता' और उन्होंने आज्ञा दी कि अभी जाकर मुसल्मानोंसे कह दिया जाय—'वह समझौता मुझको मान्य नहीं है, नतीजा चाहे जो कुछ भी हो। मैं बेचारी गायोंको इस तरह नहीं छोड़ सकता।'

इस प्रकारके विचार रखनेवाले गांधीजीके किसी वाक्यका यह अभिप्राय कभी नहीं समझना चाहिये कि वे

* संतोषकी बात है कि जनताके प्रबल आन्दोलनके फलस्वरूप यह कसाईखाना एक बार अस्थायीरूपसे बंद हो गया है। भगवान् करें स्थायीरूपसे बंद हो जाय।

पूर्ण गोवध-निरोधके विरुद्ध थे और कसाइयोंका क्रूरतापूर्ण धन्धा चलानेके लिये गोवधकी छूट देते थे।

'हम आर्थिक दृष्टिसे गौको कसाईके हाथ बेचना अनावश्यक और असम्भव बना दें।'

—'हरिजन'; १९-२-१९३८ (गाँधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ ४)

'दुनियाके पशुओंकी कहीं ऐसी दुर्दशा नहीं है जैसी भारतमें है।'

—'यंग इण्डिया', २९-१०-१९२५ (गाँधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ १२)

'दुर्भाग्यसे दुनियाभरमें हिंदुओंके पूज्य पशु गायको मारना कहीं इतना सस्ता नहीं, जितना हिंदुओंके इस देशमें है।'

—'यंग इण्डिया', ७।७।१९२७ (गाँधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ १३)

महात्माजीने २२।१०।१९२५ के 'यंग इण्डिया' (गाँधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ १५) में उस समयके ब्रिटिश शासनकी निम्न शब्दोंमें भर्त्सना की थी—

'भारतको इस बातपर शर्म आनी चाहिये कि वह हर साल ९ करोड़ रुपयेकी मारे हुए पशुओंकी खालोंका निर्यात करे और अपनी जरूरतके लिये भी पशुओंको मारकर चमड़ा प्राप्त करे।'

कांग्रेस शासनने १९६६-६७ की सालमें मारे हुए पशुओंकी १५ करोड़ ४० लाख रुपयोंकी खालोंके निर्यातसे २ करोड़ २० लाख अमेरिकन डालर कमाये हैं (इण्डिया, पाकेट बुक आफ इकोनोमिक्स इन्फारमेशन, १९६७, पृष्ठ १०४) और भविष्यमें इसको बढ़ानेकी योजना है। उस समयकी ब्रिटिश सरकारको तो मारे हुए पशुओंकी ९ करोड़ रुपयोंकी खाल निर्यात करनेमें शर्म आनी चाहिये थी, लेकिन आजकी कांग्रेस सरकार तो लगभग १५॥ करोड़ रुपयोंकी मारे हुए पशुओंकी खालोंका निर्यात करके लगभग २। करोड़ अमेरिकन डालर कमाकर गौरवका अनुभव कर रही है, इसीलिये इसको बढ़ानेकी योजना है ! वर्तमान कालमें अनुमानतः ३० हजार गोवंशके पशु प्रतिदिन काटे जाते हैं और वर्ल्ड बैंककी ओरसे भेजे गये वेल कमीशनने २ लाख गोवंशके पशु प्रतिदिन काटकर करोड़ों-अरबोंकी संख्यामें विदेशी मुद्रा कमानेकी सलाह दी है। यदि भारतकी कांग्रेस सरकार महात्माजीके सिद्धान्तके अनुसार मारे हुए पशुकी खालोंका निर्यात बंद कर दे, तभी गायको कसाईके हाथ आर्थिक दृष्टिसे बेचना असम्भव किया जा सकता है।

महात्माजीने 'हरिजन', ३०।११।१९४७ (गाँधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ १७) में लिखा है—'कुछ विशेषज्ञोंका ख्याल है कि पशुधन देशपर बोझ है और कटनेके ही लायक है। मैं इस विचारको स्वीकार नहीं करता······।' महात्माजीकी अनुयायी हमारी कांग्रेस सरकार महात्माजीके इस सिद्धान्तको स्वीकार कर ले तो गायको कसाईके हाथ आर्थिक दृष्टिसे बेचना असम्भव किया जा सकता है।

यही कारण है जिससे भारतवर्षमें गोवंशका वध करना सस्ता हो गया है।

पशुओंकी दुर्दशा इसलिये है; क्योंकि उनके पालनेवाले किसानोंकी दुर्दशा है, जो महात्माजीके निम्न वाक्योंसे स्पष्ट है—

'हमारे अधिकांश ग्रामीण भाई पशुओंके साथ ही अक्सर एक ही घरमें रहते हैं, दोनों एक साथ रहते हैं और भूखे भी एक साथ मरते हैं।'

—'हरिजन', १५।२।१९४२, (गाँधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ ४)

कांग्रेस शासन होनेके बाद भी और महात्माजीके उपर्युक्त विचारोंसे अवगत रहनेपर भी पण्डित नेहरूजीके प्रधानमन्त्रित्वमें गोवधको प्रोत्साहन रहा, इसमें एक प्रधान कारण पण्डितजीके अपने विचार थे।

पण्डित नेहरूजीके न तो गोवंशके प्रति धार्मिक भाव थे, न वे गोवधको बुरा समझते ही थे और शायद गोमांससे उनको परहेज भी नहीं था। यही कारण है कि विशेषज्ञोंके फेरमें पड़कर गोवध रोकनेकी ओर तो उनका झुकाव दूर रहा, वे प्रकारान्तरसे गोवधको प्रोत्साहन देते थे। संविधानके अनुच्छेद ४८ के अनुसार गोवध-बंदीकी शिफारिस होनेपर भी प्रजाकी माँगपर जो स्टेट गोवध बंदी करनेकी ओर प्रगतिशील होती उसको भी पण्डितजीकी सरकारकी ओरसे रोकनेकी चेष्टा ही होती थी, जो नीचे दिये जानेवाले वर्णनसे स्पष्ट हो जायगी। (क्रमशः)

वर्तमान भारतमें धर्मका अभाव तथा उसके दुष्परिणाम

(लेखक—प्रो० डा० सीतारामजी झा 'श्याम', एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

धर्म भारतीय जीवनका मूल आधार है। इसके अभावमें राष्ट्रीय उत्थानकी परिकल्पना ही नहीं की जा सकती। जैसे बिना मिट्टीके संस्पर्शसे पौधोंका विकास असम्भव है, वैसे ही धर्मसे विमुख होकर देशको विकासोन्मुख बनानेकी योजना भी व्यर्थ ही है। भारतकी राष्ट्रीय आत्मा ही आध्यात्मिक है। अतः अध्यात्मकी उपेक्षा करना देशको विनाश और मृत्युकी ओर ले जाना है। भारत-भूमि सदासे धर्मकी खादको पाकर ही उर्वरा रहती आयी है; इसकी कमीके कारण ही तो यह शस्य-श्यामला भूमि दिन-प्रतिदिन शुष्क बनती जा रही है। नमीसे विहीन जमीनपर स्वस्थ और सुन्दर पौधोंको लहलहाते देखनेकी अभिलाषा सर्वथा हास्यास्पद नहीं तो और क्या ?

धर्मके अभावके कारण ही स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पश्चात् भी हमारे देशका नैतिक उन्नयन नहीं हो सका है। वरं पतन हुआ है। उच्च पदस्थ व्यक्तियोंसे लेकर जनसाधारणतक प्रायः निम्नस्तरपर आ गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे सम्पूर्ण राष्ट्र ही गन्दे कीचड़में फँसा है। धर्मके प्रकाशपर अज्ञानका पर्दा डालकर अनैतिकताका जो बीज-वपन अंगरेजोंके शासन-कालमें हुआ था, वह आज पल्लवित-पुष्पित होकर विशाल वृक्षके रूपमें विद्यमान है। इसकी शाखाएँ सभी विभागोंमें फैल चुकी हैं और वे सदा हरित-मञ्जरित ही रहा करती हैं। पतझड़ कभी भूलकर भी वहाँ नहीं पहुँच पाता, सदा वसंतकी बहार ही रहती है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि देशका सारा रस इसी विष-वृक्षके पोषणमें समाप्त होता चला जा रहा है। भ्रष्टाचारका उदर इतना विस्तृत हो गया है कि वह सभी प्रकारके विदेशी ऋणोंको भी बिना डकारके अपनी परिधिमें समाहित करता चला जा रहा है। जब मनुष्यमें धर्मका भय न रह जाय तो वह जघन्य-से-जघन्य पाप करनेमें जरा भी नहीं हिचकिचाता।

विगत तीन वर्षोंसे मैं देशके विभिन्न भागोंमें घूमता रहा हूँ। यात्राके क्रममें, आवश्यकतानुसार, प्रायः सभी विभागोंसे न्यूनाधिकरूपमें सम्पर्क स्थापित करनेका अवसर मिला है। वैयक्तिक अनुभवके आधारपर मुझे यही देखनेमें आया है कि भ्रष्टाचारकी समस्याएँ अपनी सम्पूर्णतामें सर्वत्र फैली हुई हैं और उनके विभिन्न संदर्भोंसे सम्पृक्त होकर सब कोई पशुवत् आचरण करनेमें तल्लीन हैं। ध्यातव्य है कि जबतक मनुष्य धर्मके अनुशासनको स्वीकार नहीं करेगा, तबतक कर्त्तव्याकर्त्तव्यपर विचार करनेकी आवश्यकता ही वह नहीं समझेगा। आज चारों ओर उच्छृङ्खलताका जो साम्राज्य व्याप्त है, उसका एक यही कारण है। मनुष्यने अपने सभी संस्कार नष्ट कर डाले हैं। इसलिये मनुष्यताकी महत्ताको समझनेका उसका ज्ञान भी लुप्त हो चुका है। परिणामतः जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त पाप-पंकमें फँसे रहनेमें ही वह अपना कल्याण समझ बैठा है। इस बातको निम्नाङ्कित शीर्षकोंके अन्तर्गत स्पष्टतया समझा जा सकता है।

जन्मजात संस्कारका लोप

संस्कारी बच्चोंके आविर्भावके लिये नियन्त्रित एवं धार्मिक वातावरण अनिवार्य है। विवाहकी आवश्यकता इसीलिये समझी गयी थी। पति-पत्नीद्वारा जबतक महान् उद्देश्यको सामने रखकर गर्भाधान-संस्कार नहीं सम्पन्न होगा, तबतक निष्ठावान् बच्चेकी आशा नहीं की जा सकती। आज अनुमानतः पच्चीस प्रतिशततक नवजात शिशु गंदी नालियोंमें बहकर अस्पताल पहुँचते हैं और फिर अनाथालयमें पलकर भोजनालय (होटल) में अपना शेष जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें कभी स्नेहका संस्पर्श नहीं होता, संस्कारका बोध नहीं हो पाता और सदाचारको व्यवहारमें लानेका अवसर नहीं प्राप्त होता। परस्पर मांसलोभी नर-मादाद्वारा उछाले गये विकृत जीवनसे आप सत्यवादी, ईमानदार और देशभक्त होनेकी आशा कथमपि नहीं कर सकते। जब कि नींव ही सड़ी हुई है तो ऊँचा मकान बनानेकी कल्पना कैसे कर सकते हैं ?

पारिवारिक परिवेश

भ्रष्टाचारको प्रश्रय देनेमें आज परिवारका सर्वोपरि स्थान है। वे माता-पिता अपनेको धन्य मान लेते हैं जिनकी संतानें सौ रुपयेकी नौकरीपर रहकर रिश्वतके बलपर उन्हें पाँच सौ रुपये प्रतिमहीने भेजा करती हैं। इस संक्रामक रोगका प्रसार क्या शहर और क्या गाँव—सर्वत्र इतनी तेजीसे हो रहा है कि सुशिक्षित व्यक्ति यदि वह धार्मिक प्रवृत्तिका है और ईमानदारीसे काम करता है तो उसे अपने परिवारमें ही आदर नहीं मिल रहा है। उसे सदा अधिक-से-अधिक रुपयोंको, चाहे वह जैसे भी हो, जमा करनेके लिये उकसाया जाता या दबाया जाता है। मुझे आजतक किसी भी परिवारसे यह आवाज सुननेको प्रायः नहीं मिलती कि परिवारवाले अपने बच्चोंसे पूछते हों कि सौ रुपयेकी नौकरी कर पाँच सौ

रुपये घर कैसे भेजे जाते हैं ? किसी पत्नीने अपने पतिसे, बहनने भाईसे या माता-पिताने बेटेसे यह प्रश्न शायद ही किया हो कि तुम वेतनसे दसगुणा अधिकका सामान कहाँसे लाते हो ? अपितु वे सभी अधिक-से-अधिक आदर-सत्कारका भाव तभी जनाते हैं, जब कीमती-से-कीमती चीजें उन्हें भेंट की जाती हैं। जो ऐसा नहीं करते उनके प्रति उपेक्षाके साथ-साथ घृणाका भी प्रदर्शन किया जाता है। जीवनकी प्रथम और प्रधान पाठशाला परिवारकी जब यह स्थिति है तो उसके एक अङ्गसे क्या अपेक्षा की जा सकती है ? जिस परिवारमें धार्मिकता नामकी कोई चीज न हो, ईमानदारीके प्रति आस्था नहीं हो, वह प्रेतके अड्डोंसे भिन्न और क्या है ?

सामाजिक वातावरण

प्रत्येक व्यक्ति समाजमें अपना ऊँचा स्थान बनाना चाहता है। इसलिये वह स्वभावतः सामाजिक उन्नतिकी होड़में अपनेको लगा देता है; परंतु ध्यातव्य है कि यह समाजके स्वरूपपर निर्भर है कि व्यक्ति अथवा परिवारको वह किस दिशामें प्रभावित करेगा। आजके समाजमें प्रतिष्ठाका क्या मान-दण्ड रह गया है ?—वही व्यक्ति सम्मानित समझा जाता है जो बड़े-से-बड़ा मकान बना लेता है, गाड़ियाँ खरीद लेता है, गरीबोंकी जमीनें हड़प लेता है आदि-आदि। समाजके प्रायः नब्बे प्रतिशत लोग भ्रष्टाचारको बढ़ानेमें ही लगे हुए हैं। जो दस प्रतिशत लोग ईमानदार हैं, उन्हें ये लोग मूर्ख ही समझते हैं। अनेक गाँवोंमें मुझे यह सुननेमें आया कि "अमुक व्यक्ति बड़ा मेधावी, परिश्रमी और ऊँची डिग्रियाँ प्राप्त करनेवाला गिना जाता है, पर देखो न, अभी-तक झोंपड़ीकी झोंपड़ी ही है, वही मोटा खाना और मोटा पहनना। कहते हैं, बड़े पदपर हैं; परंतु पदको धो-धोकर चाटेंगे क्या ? इससे अच्छा तो 'वह' है जिसने किरानीका काम करनेपर भी अच्छा-सा मकान बना लिया, बीघों जमीन खरीद ली और रहन-सहनके स्तरको ऊँचा कर लिया। उसकी औरत तो पचास रुपयेसे कमकी साड़ी पहनती ही नहीं है" आदि। विचारणीय है आजकी इस मँहगीमें कोई किरानी अपने परिवारका पालन करते हुए मकान कैसे बना लेता है, जमीन कैसे खरीदता है तथा पचास रुपयेसे कमकी साड़ी उसकी औरत क्यों नहीं पहनती है और पहन रही है तो वह आती कहाँसे है ? ये प्रश्न आजके समाजमें नहीं उठ रहे हैं। उठेंगे भी कैसे ? ऊपरसे नीचेतक तो सभी एक ही थैलेके चट्टे-बट्टे हैं। भेड़ोंकी तरह सभी एक ही कतारमें एक ही दिशाकी ओर चले जा रहे हैं। यही हाल व्यापारी-वर्गका है। जो अधिक-से-अधिक सामानोंको छिपाकर रखता है और गुप्त रूपसे अधिक-से-अधिक दामोंपर बेचता है। अपने समुदायमें वही वाहवाही लूटता है।

सामाजिक वातावरण इतना कलुषित हो गया है कि विवाह-जैसे पुण्यकार्यको सम्पन्न करनेके पहले भी भ्रष्टाचार-विभूषित व्यक्तिको ही लड़कीवाले 'प्रेफर' करते हैं। किसी लड़केके सम्बन्धमें लड़कीवाले सबसे पहले यही पूछते हैं कि "ऊपरकी आय कितनी है ? 'इधर-उधर'से कितना मिलता है ? "ऊपरकी आय' और 'इधर-उधर'के कामको बढ़ानेके लिये ही प्रायः वे ऊपरसे एक सहायिकाको भी दे देना चाहते हैं। यदि ऐसा नहीं होगा तो उनकी लड़कियाँ एम्बेसेडर गाड़ीमें बैठकर प्रतिदिन सिनेमा देखने कैसे जायँगीं, प्रति सप्ताह नये-नये सोफासेट कैसे बदलेंगी और बराबर नयी-नयी कीमती साड़ियाँ कैसे खरीदेंगी ?

आदर्शहीन शिक्षण-संस्थाएँ

शिक्षा मनुष्य इसलिये पाता है कि वह अपनी बुद्धिका उचित उपयोग कर सके। इस प्रकार शिक्षण-संस्थाओंका दायित्व बढ़ जाता है। परंतु आजकी शिक्षा-संस्थाओंका कोई आदर्श रह गया है ? भ्रष्टाचारमें निष्णात होनेकी बातें ही शिक्षार्थियोंके समक्ष बराबर उपस्थित होती रहती हैं। विद्यार्थियोंके आदर्श होते हैं उनके शिक्षक। परंतु कहना न होगा कि आज आचार्य कहलानेवाले शिक्षक कठिनतासे एक प्रतिशत रह गये हैं। उनके अधिकांश कार्योंको भ्रष्ट ही कहा जायगा। झूठ बोलना, खुशामदी प्रवृत्तियोंको प्रश्रय देना, शिक्षार्थियोंकी सहायतासे अनुचित लाभ उठाना आदि अधिकांश शिक्षकोंका अभ्यास हो गया है। तटस्थ और स्वाभिमानी छात्रोंके उत्साहको प्रायः पूर्णतया दबानेका प्रयास किया जाता है। फिर दूसरे छात्रको स्वाभिमान और निर्भयता-के साथ रहनेमें बहुत-कुछ सोचना पड़ता है। जब मनुष्यको धर्मके भयको छोड़नेके लिये बाध्य किया जायगा तो वह निर्भय रह भी कैसे सकता है ? परिणामस्वरूप विद्यार्थियोंका नैतिक स्तर इतना गिर जाता है कि जब वे शिक्षा समाप्त कर किसी पदपर चले जाते हैं तो खुशामद, रिश्वत आदिको ही अधिक पसंद करते हैं। उन्हें तो वे ही सारे रास्ते देखे हुए रहते हैं और आत्मबल तो उनका पहले ही समाप्त हो गया रहता है। फिर तो गंदगीमें पलनेवाले जीव गंदे पदार्थोंको ही अपना प्रधान और अन्तिम प्राप्य समझ बैठते हैं।

राजनीतिक गति-विधियाँ

वैचारिक क्रान्तिके लिये अनेक राजनीतिक दलोंका होना

हितकर है। परंतु राजनीतिक दलोंको ऊँचे उद्देश्योंसे ही संघटित और परिचालित होना चाहिये। सम्प्रति देखा जाता है कि राजनीतिक नेता मुख्यतः बहेलियों-जैसे ही होते हैं जो अवसर-विशेषकी बोलियोंको बोलकर अपना अभीष्ट सिद्ध कर लेते हैं। ऐसे प्रयासमें वे नैतिक-अनैतिक साधनोंका ध्यान नहीं रखते। इसका प्रबल प्रभाव समाजपर पड़ता है। समाजके स्वार्थी लोग यह समझने लगते हैं कि जब उनके नेता ही भ्रष्ट और स्वार्थान्ध हैं तो उन्हें भी उस प्रवहमान धारामें अवश्य ही हाथ धोते रहना है। भ्रष्टाचारको अधिकाधिक बल नेताओं और अधिकारियों (अफसरों) से मिलता है। जबतक इन लोगोंके हृदयमें धार्मिक भावनाका उदय न होगा, तबतक नैतिकता आ ही नहीं सकती है और अनैतिकतासे अच्छे कर्मोंका होना वैसे ही असम्भव है जैसे बबूलको सींचकर आम प्राप्त करना।

आध्यात्मिक अधोगति

धर्म मनुष्यको अध्यात्मकी ओर प्रेरित करता है। अध्यात्म-चिन्तन मानवको निम्नस्तरसे उच्चस्तरपर ले जानेका अप्रतिम साधन है। मनुष्य जब दूषित प्रवृत्तियोंकी संकुचित परिधिसे निकलकर मानवताके ऊँचे धरातलपर आकर गहन चिन्तन-मनन करेगा, तभी उसे सत्यका आलोक दिखायी पड़ेगा। आज इसका सर्वथा अभाव हो गया है। फलतः नब्बे प्रतिशत लोग अनीतिकी अंध गलियोंसे गुजरनेमें ही जीवनकी सार्थकता समझने लगे हैं। अस्तु,

यदि हम मानवोचित कर्तव्य करना चाहते हैं तो हमें धर्मका अवलम्बन लेना होगा और इसके लिये आवश्यक है कि उत्तरदायित्वपूर्ण स्थितिमें ही बच्चोंको जन्म दिया जाय, परिवारमें स्वार्थकलुषरहित स्नेह और पवित्रताका स्रोत बहता रहे, समाज सद्व्यवहारोंको ही प्रश्रय दे, शिक्षाका योग्यता एवं सच्चरित्रतासे घनिष्ठ सम्बन्ध हो, राजनीति निःस्वार्थ विशुद्ध देश-भक्ति तथा सेवा-भावसे गतिशील हो तथा सबकी अन्तरात्मा ईश्वरीय आभासे प्रकाशित रहे।

कामके पत्र

(१)

देश पतनकी ओर जा रहा है

प्रिय महोदय ! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला था, उत्तर देरसे जा रहा है। आपने अपने पत्रमें देशकी तथा धर्मकी जो शोचनीय स्थिति लिखी है, वह वस्तुतः सत्य है। पता नहीं क्या होनेवाला है, पर जिस ओर देश जा रहा है, उसे देखते तो भविष्य और भी अन्धकारमय तथा कष्टप्रद ही दीखता है। बुद्धिके विपरीत निर्णयसे प्रायः सभी कुछ विपरीत हो रहा है। माना जा रहा है—उत्थान, विकास और उन्नति। पर वस्तुतः हो रहा है—पतन, विनाश और अधोगति—'सर्वार्थान् विपरीतांश्च'।

प्रथम तो भारतमाताका अङ्गच्छेद करके जो पाकिस्ताननिर्माणका महापाप हुआ, वही बहुत बड़ी भूल हुई। दूसरे जब 'इस्लामी' राज्यके रूपमें पाकिस्तान बना तो 'भारत' को बहुमत समाजके नाते 'हिंदू' राज्य घोषित करना चाहिये था। पर दुर्भाग्य-वश—हमारे नेताओंकी उदार भावनासे या किसी विदेशी चक्रके परिणामस्वरूप इसे 'सेक्यूलर' या 'धर्मनिरपेक्ष' राज्य घोषित किया गया। 'हिंदूराज्य' कहना संकुचित माना गया। यह भी हमारी संस्कृतिके तथा हमारे धर्मके स्वरूपको न समझनेके कारण ही हुआ। नहीं तो, हिंदू-संस्कृति या हिंदू-धर्मके समान उदार तथा सर्वाश्रय, सर्वरक्षक, सर्वकल्याणप्रद, सर्वहितकर धर्म और कोई है नहीं। जो चराचर प्राणिमात्रमें एक आत्मा या एक भगवान्‌को देखता है और सबके कल्याणमें ही अपना कल्याण देखनेकी घोषणा करता है।

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।'
(ईश० उ० १)

'इस चल जगत्‌में जो कुछ भी है, सबमें ईश्वर परिव्याप्त है।'

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥
(गीता ६। २९)

'सबमें समभावसे परमात्माको देखनेवाला योगयुक्तात्मा अपने आत्मामें सब भूतप्राणियोंको और सब भूतप्राणियोंमें अपने आत्माको देखता है।'

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
(गीता ६ । ३०)

'जो मुझ (भगवान्) को सर्वत्र देखता है और सबको मुझ (भगवान्) में देखता है, उससे भगवान् कभी ओझल नहीं होते, वह कभी भगवान्से ओझल नहीं होता ।'

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥
(गीता ५ । १९)

'विद्याविनयसम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल—सबमें समभावसे आत्माको देखनेवाला पण्डित है ।'

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी मयि वर्तते॥
(६ । ३२)

'जो अपने आत्माकी उपमासे अपने ही समान सर्वत्र सबके सुख या दुःखको देखता है, वह योगी सदा भगवान्में बर्तता है।'

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत् किं च भूतं प्रणमेदनन्यः॥
(श्रीमद्भा० ११।२।४१)

'यह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-वनस्पति, नदी, समुद्र—सभी भगवान्के शरीर हैं । सभी रूपोंमें स्वयं भगवान् प्रकट हैं । यों समझकर वह, जो कोई भी सामने आ जाता है, उसे अनन्य भावसे भगवद्भावसे प्रणाम करता है ।'

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

'सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब कल्याणका साक्षात्कार करें, दुःखका भाग किसीको न मिले ।'

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत का सन करहिं बिरोध॥

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

'वसुधैव कुटुम्बकम्' 'आत्मवत् सर्वभूतेषु'—ये सब हिंदू-धर्मके सिद्धान्त हैं । कभी समस्त विश्वमें यदि शान्ति होगी तो इसी हिंदू-धर्म (जिसे 'मानवधर्म' ही नहीं, 'विश्वधर्म' या 'आत्म-धर्म' कह सकते हैं) से होगी । तभी प्रत्येक मनुष्य विश्वके सभी जीवोंमें अपनेको या भगवान्को देखेगा, तभी सम्पूर्ण विश्व एक महान् विराट् शरीर होगा और तभी जैसे पैरसे लेकर सिरतक सारे अङ्गोंको हम अपना ही स्वरूप मानकर किसीका असुख-अहित नहीं चाहते, वरं सहज ही सबका सुख-हित सम्पादन करते हैं, वैसे ही विश्वका प्रत्येक मानव प्रत्येक मानवका सुख-हित सम्पादन करेगा । संत विनोबाकी 'जय जगत्' कल्पना तभी सार्थक होगी । यही सच्ची मानवता होगी । पर हमारे अंदरसे तो मानो सर्वहितसाधिनी यह मानवता ही निकल गयी है । इसीसे हमने 'हिंदू-राज्य' घोषित न करके एक नये सम्प्रदाय 'धर्मनिरपेक्ष' राज्यकी धर्मनाशिनी नींव डाली है । इसीसे आज बहुमतका स्वाभाविक अधिकार होनेपर भी हम अपनेको 'हिंदू' कहते लजाते हैं, कहीं सम्प्रदायवादी न कहलाने लगें—इससे डरते हैं और इसीलिये आजका शिक्षित अग्रणी समाज तथा सहज ही उसका अनुगमन करनेवाली जनतामें 'धर्मनिरपेक्षता'के नामपर 'धर्महीनता' आ गयी है और परिणामस्वरूप 'भरतीय धर्म' तथा 'भारतीय आचार'में अनुदारता, संकुचितता और हीनता दीखने लगी है । एवं इसीसे हमारे शिक्षा-जगत्से 'धार्मिक शिक्षा'का नाम उठा जा रहा है । उदार हिंदू-धर्मको न समझनेके कारण हमारा 'स्व' अत्यन्त संकुचित, छोटी-सी सीमामें आबद्ध हो गया, इसीका परिणाम है मानवताका ह्रास।

विनय, त्याग तथा प्रेमपूर्ण समझौतेसे समस्या सुलझानेके स्थानपर अनुशासनहीनता, उद्दण्डता, उच्छृङ्खलता, विध्वंस और हत्याका ताण्डवनृत्य! हमारा प्रत्येक क्षेत्र आज इस दुर्दशासे ग्रस्त है, इस भीषण पीड़ासे संत्रस्त है, राजनीतिक क्षेत्र विशेष रूपसे। यह अविवेककी घोर आँधी पाश्चात्त्य देशोंमें तो थी ही, हमारे यहाँ भी आ गयी। बस, अपने क्षुद्र 'स्व' के 'अर्थ'—साधनके लिये—नीच 'स्वार्थके' लिये संगठन करो, आन्दोलन करो, विपक्षियोंको गालियाँ दो, बहुत रूखे तथा कड़े शब्दोंमें नये-नये दोष बताकर उनका प्रचार करो, उत्पात-उपद्रव मचाओ, आग लगाओ, लूट-पाट करो, हत्या-हिंसा करो। इससे प्रेम तथा शान्तिकी आशा कैसे की जा सकती है? और कैसे यथार्थ विकासको अवसर मिल सकता है? राजनीतिक नेताओंमें तो यह रोग भयानकरूपसे व्याप्त हो गया है और उनकी देखादेखी आगकी तरह विद्यार्थियों तथा अन्य जनोंमें भी फैल रहा है। इसीसे आज देशमें शान्तिप्रिय, विवेकी, तपस्वी, तितिक्षु, जितेन्द्रिय, क्षुद्र-स्वार्थहीन सबका कल्याण चाहनेवाले, उदार सत्पुरुषोंका राजनीतिक जगत्में अभाव होता जा रहा है, जो पतनका एक प्रधान लक्षण है।

प्राचीन कालमें राजनीति धर्म-नियन्त्रित थी। सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओंका इतिहास देखिये। सारी राज्यप्रणाली तथा राज्यशासन आध्यात्मिक तपस्वी, शमदमसम्पन्न, उदारमना ऋषियोंके द्वारा अनुशासित था, जो सत्य तथा न्यायकी रक्षा करनेमें सहज ही सहायक होता था। अब तो अध्यात्मको ढकोसला और धर्मको पतनका कारण बताया जाता है। इसीसे ऐसा लगता है कि अभी हमारी जैसी स्थिति—गति है, उसके अनुसार हम पतनके गर्तकी ओर ही दौड़े जा रहे हैं।

भगवान् सबको सद्बुद्धि दें। सबका कल्याण करें। शेष भगवत्कृपा।

(२)

अमेरिकाका अन्धानुकरण नहीं करना है

प्रिय भाई! सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला था। कोई भी संस्कृति या समाज सर्वथा निर्दोष तथा पूर्ण है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता; पर हमारी संस्कृतिमें, समाजमें सर्वथा दोष-ही-दोष है और पाश्चात्त्य देशोंमें सद्गुण-ही-सद्गुण है—यह मानकर अन्धानुकरण करना कदापि बुद्धिमानी नहीं है। अच्छी चीज, सद्गुण सभीसे ग्रहण करने चाहिये; परंतु अच्छे-बुरेका निश्चय करनेवाली विवेकबुद्धिको जाग्रत् रखकर। तुमने हिंसाके सम्बन्धमें लिखा है। सत्य है। हमारे यहाँ हिंसा बहुत है और वह दोष है; पर वर्तमानका यह हिंसाका बढ़ता हुआ हमारा दोष वास्तवमें उन देशोंसे आया और आ रहा है, जिनको आँखें मूँदकर हमने अपने लिये आदर्श गुरु मान लिया है। तुम अमेरिकाकी बात कहते हो, पर तुम्हें शायद पता नहीं है कि अमेरिकामें हिंसा कितनी बढ़ गयी है। तुम्हें जानना चाहिये कि अमेरिकामें इधरके उन्नीस राष्ट्रपतियोंमें चार तो हत्यारोंके द्वारा मारे गये हैं और तीनको मारनेका प्रयास हुआ है। किसी देशमें ऐसी राजनीतिक हत्याएँ नहीं हुईं।

अमेरिकामें मनुष्य-जीवन इतना संदेहका हो गया है और एक दूसरेके द्वारा एक दूसरेकी हत्याकी इतनी सम्भावना बनी रहती है कि वहाँ प्रायः खुलेआम लोग पिस्तौल तथा राइफल रखते हैं। पिछले दिनों बम्बईके 'मुंबई समाचार'में छपा था कि वियतनामके युद्धमें जितनी हत्याएँ होती हैं, उससे अधिक प्रतिदिन अमेरिकामें होती हैं। वहाँ प्रति आधे घंटेमें एक खून होता है।

अमेरिकामें शस्त्र बड़ी आसानीसे खरीदे जा सकते हैं। मोटर चलानेवाले ड्राइवरको तो परीक्षा देनी पड़ती है और गाड़ीकी विगत लिखवानी पड़ती है। पर

बन्दूक खरीदनेमें न परीक्षाकी जरूरत है, न विगत लिखवानेकी। अमेरिकामें अभी कितने शस्त्र हैं इसकी किसीको जानकारी नहीं है, पर लोगोंके अनुमानसे पाँच करोड़से बीस करोड़तक माने जाते हैं। यानी प्रत्येक मनुष्यके पीछे एक शस्त्र।

गतवर्ष अमेरिकामें ६५०० हत्याएँ हुईं, लगभग १०००० अमेरिकनोंने आत्महत्या की, २५०० व्यक्ति बन्दूककी दुर्घटनाओंसे मारे गये। इस प्रकार किसी-न-किसी प्रकारसे बन्दूकसे १९००० आदमी मारे गये।

हमलोग यदि सभी बातोंमें अमेरिकाको आदर्श मानेंगे तो हमारी क्या दशा होगी, जरा विचार करो।

अमेरिकामें असहिष्णुता तथा असंतोष इतना है कि सबसे अधिक आत्महत्या वहाँ होती है तथा सबसे अधिक पागलोंकी संख्या अमेरिकामें है। इतनी बुरी हालत है कि प्रायः स्वाभाविक नींद लोगोंको नहीं आती, इससे नींदकी गोलियाँ जेबमें रक्खी जाती हैं।

रही स्त्रियोंकी बात, सो वास्तवमें अमेरिका तथा यूरोपमें स्त्रियोंकी बड़ी ही दुर्दशा है। प्रति मिनट वहाँ अनगिनत विवाह-विच्छेद होते हैं। विवाह एक खिलवाड़ हो गया है और हो गया है दुःख तथा अशान्तिका हेतु। पारिवारिक जीवन तो वहाँ नष्ट हो चुका है। सभीको अपनी चिन्ता है। उसीकी देखादेखी हमारे यहाँ भी ये सब बुराइयाँ आने लगी हैं। हमारे घरोंकी देवियाँ भी स्वतन्त्रताके मोहमें अपने गौरवपूर्ण अधिकारसे वञ्चित होने जा रही हैं और वे आज जीविकाकी प्रतियोगितामें पथपर आकर खड़ी होने लगी हैं। पता नहीं, इस व्यामोहका क्या परिणाम होगा।

अतएव भाई! अमेरिका-यूरोपसे जो कुछ लाभकी वस्तु हो, उसे अवश्य ग्रहण करो; परंतु सभी बातोंमें अन्धे होकर उनकी नकल करना अपने पैरोंपर कुल्हाड़ी मारना ही नहीं, अपनी गौरवमयी संस्कृतिका मूलोच्छेद करना है, जो एक प्रकारका पागलपन है। इससे यथासाध्य स्वयं बचो और अपने मित्र-बन्धुओंको बचानेकी चेष्टा करो। शेष भगवत्कृपा।

(३)

परिवार-नियोजन हानिकारक है

सम्मान्य महोदय! सादर हरिस्मरण! आपका कृपापत्र मिला था। वर्तमानमें सरकारकी ओरसे जो परिवार-नियोजन-अभियान चल रहा है, मैं इसको बहुत हानिकारक समझता हूँ। यह सत्य है कि मनुष्योंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है और उसके खान-पानकी वस्तुओंकी कमीका प्रश्न सामने है। पर भगवान्‌के कार्यको अपने हाथमें लेने जाना वस्तुतः अनुचित और अनधिकार चेष्टा है। परिवार-नियोजनके वर्तमान उपायोंसे भाँति-भाँतिकी बीमारियाँ बढ़ती हैं, यह प्रमाणित होता जा रहा है। स्त्री-पुरुषोंमें उच्छृङ्खलता बढ़ती है और व्यभिचारको प्रोत्साहन मिलता है—ये सब बुराइयाँ तो प्रत्यक्ष हैं। सबसे बड़ा प्रश्न है 'हिंदू जातिके भविष्य'का। वर्तमान परिवार-नियोजनका कार्य प्रायः हिंदुओंमें ही चल रहा है। मुसल्मान इसे 'धर्मविरोधी' मानकर नहीं करवा रहे हैं। मुसल्मानोंमें 'बहु-विवाह' भी धर्मसम्मत है। अतः मुसल्मानोंकी संख्या अनुपातसे क्रमशः बढ़ रही है और हिंदुओंकी घट रही है, जो और भी घटेगी। यही स्थिति रही तो मुसल्मानोंकी संख्या हिंदुओंके बराबर या उनसे अधिक हो सकती है और उसका क्या दुष्परिणाम हो सकता है, इसका अनुमान वर्तमान एक पाकिस्तानसे ही लगाया जा सकता है। ईसाइयोंकी संख्या भी क्रमशः बढ़ रही है। इस ओर सभी न्यायप्रिय लोगोंको ध्यान देना चाहिये, खास करके हिंदुओंको।

संतानवृद्धि रोकनेका सबसे सुन्दर उपाय है—ब्रह्मचर्यका पालन और संयम। उसका प्रचार करना चाहिये। रही खाद्यान्नकी बात, सो जो भगवान् सृष्टिका

उत्पादन करते हैं, वे उसके भरण-पोषणकी भी व्यवस्था करेंगे ही। यह विश्वास रखना चाहिये। अथवा वे चाहें तो कालरूप बनकर बहुत बड़ी संख्याका अल्प समयमें ही संहार भी कर सकते हैं। इन सब बातोंपर विचार करनेसे मुझे तो यह योजना तथा कार्य अच्छा नहीं लग रहा है।

आपने मेरा मत इस विषयमें जानना चाहा, सो मेरा मत तो इसके विरोधमें है। शेष भगवत्कृपा।

(४)

जिसमें आज्ञा देनेवालेका बुरा होता हो, वह आज्ञा मत मानो

प्रिय बहिन! सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपकी परिस्थिति अवश्य ही बहुत कठिन है। भगवान्‌की कृपापर भरोसा रखकर उनसे बल माँगिये। उनकी कृपासे आप इस संकटसे मुक्त हो जायँगी। सासजी अथवा पतिदेवकी आज्ञाको वहाँ तक उसे अवश्य मानना चाहिये जिसमें अपना चाहे भला न होता हो, परंतु उनका भला होता हो। उनके मङ्गलके लिये अपने स्वार्थका त्याग कर देना चाहिये, परंतु उनकी ऐसी आज्ञा मानना धर्म नहीं है, जिसके माननेसे अपना तो बुरा होता ही हो, पर उनका भी बुरा होता हो। आपको वे लोग जिस बातके लिये कहते हैं, वह मानने योग्य नहीं है, अतएव उसके लिये साफ इन्कार कर देना चाहिये। इससे परिणाममें आपका अमङ्गल नहीं होगा; क्योंकि अच्छेका फल कभी बुरा नहीं होता। अवश्य ही एक बार आपको कुछ कठिनाई हो सकती है। उसे आपको सहना चाहिये। धर्म-पालनमें पहले कष्ट हुआ ही करता है। सात्त्विक सुख पहले विष-सा लगता है; परंतु परिणाममें अमृतके सदृश होता है—

'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्'। (गीता १८। ३७)

—साथ ही, सासजीकी बुद्धि शुद्ध हो, उनका भविष्य न बिगड़े, इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये और ऐसा ही बर्ताव यथासाध्य करना चाहिये, जिससे उनका मन बहुत उद्विग्न न हो और परिणाममें उनको शान्ति मिले। विरोधकी भावना न रखकर स्नेहकी भावना रखनी चाहिये। द्वेष पापसे होना चाहिये— पाप करनेवालेसे नहीं; क्योंकि वह तो अपने-आप ही अपना बुरा कर रहा है—अतएव दया तथा सहानुभूतिका पात्र है। भगवान् उसको सद्बुद्धि देकर पापमुक्त करें—यही सोचना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

आपका भाई—

(५)

रागात्मिका और रागानुगा भक्तिका भेद

सम्मान्य महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि भक्ति सर्वश्रेष्ठ है— यह जब निश्चय और अनुभव हो जाता है, तब किसी 'रागानुग भक्त'की कृपासे 'मधुर भक्तिरस' की आसक्ति उत्पन्न होती है, तभी रागानुगा भक्तिमें चित्तकी गति होती है। श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरमें व्रजवासियोंकी जो नित्य भक्ति है, वह वैधी भक्ति नहीं है—वह 'रागात्मिका' है। रागके विभिन्न भेद हैं—किसीमें सखा-भावका राग है, किसीमें वात्सल्य-भावका और किसीमें मधुर-भावका। इसीसे इन लोगोंकी भक्ति 'रागात्मिका' कहलाती है। इस 'रागात्मिका भक्ति'के अनुगत इसीके अनुसार विभिन्न रागोंके रूपमें जो भक्ति होती है, उसे 'रागानुगा' कहते हैं। तात्पर्य यह कि इन महाभाग व्रजवासियोंके अनुगत होकर भगवान् श्रीव्रजेन्द्रनन्दनकी सेवा प्राप्त करनेके लिये जो श्रवण-कीर्तनादि साधन किये जाते हैं, उन साधनोंको 'रागानुगा' भक्ति कहते हैं। व्रजवासियोंकी रागात्मिका भक्ति नित्य है और यह रागानुगा साधनरूपा है—यही रागात्मिका और रागानुगाका भेद है। ये दोनों ही आसक्तिरूप भक्ति हैं। शेष भगवत्कृपा।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

मानवताके दर्शन

आज देशमें मानवताका दिनोंदिन ह्रास हो रहा है और दानवता अपनी चरम सीमाकी ओर जा रही है। छोटी-छोटी बातोंपर भयंकर जातीय दंगे भड़क उठते हैं, ऐसे समय यदि कहीं आदर्श मानवताकी प्रतीक कोई सच्ची घटना घटित होती है तो अन्धकारमें प्रकाशकी किरणके समान वह मार्गदर्शन करती है।

यह सच्ची घटना लगभग पाँच वर्ष पूर्वकी है। जबलपुरमें एक हिंदू बालिकाके एक मुस्लिमद्वारा अपहरण किये जानेके परिणामस्वरूप हिंदू-मुस्लिम दंगा हो गया। यह दंगा जबलपुर शहरतक ही सीमित न रहा, वरं आस-पासके क्षेत्रमें भी फैल गया।

हिंदू मुहल्लोंमें मुसल्मान और मुस्लिम मुहल्लोंमें हिंदू दानवताके शिकार हो गये।

हत्या, अग्निकाण्ड और अपहरण सभी नारकीय दुष्कृत्य उन दिनों हुए। धर्मके नामपर यह सब कुछ हुआ!

मानव मानवता छोड़ बैठा।

शहरमें कर्फ्यू लगा था।

कर्फ्यू खुलनेपर फिर छुरेबाजी प्रारम्भ हो गयी। पुलिस और सेनाके बावजूद दंगाई फसाद कर रहे थे। ऐसे समयमें एक पचीस वर्षीय युवकने भागकर प्राण बचानेके लिये एक मकानमें शरण ली।

मकान-मालिक एक वृद्ध पुरुष थे।

जातिसे ब्राह्मण थे। युवक वेशभूषासे मुसल्मान जान पड़ता था।

वृद्धने एक अपरिचितको अपने घरमें देख उसे डाँटते हुए कहा—'तुम कौन हो? यहाँ क्यों आये हो?'

युवक वृद्धके पैरोंपर गिर पड़ा और गिड़गिड़ाते हुए बोला—

'मुझको बचाइये, मैं आपकी शरणमें हूँ। कुछ दंगाई लाठियाँ और भाले लिये हुए मेरे पीछे पड़े हैं। वे आते ही होंगे, जल्दी कीजिये।'

वृद्धके हृदयमें मानवताका संचार हुआ।

शरणागतको शरण देना अपना कर्तव्य समझा। वे युवकको सान्त्वना देते हुए बोले—

'घबराओ मत, तुरंत भीतरवाले कमरेमें जाकर बैठ जाओ। मैं बाहरसे ताला लगा देता हूँ।' युवक कमरेके भीतर चला गया।

वृद्धने बाहरसे ताला लगा दिया।

थोड़ी ही देरमें कुछ दंगाई अस्त्र-शस्त्रोंसे लैस हो उधरसे निकले।

उन्होंने वृद्धसे पूछा—'क्या यहाँ कोई मुसल्मान लड़का आया है?'

वृद्धने कहा—'नहीं, यहाँ कोई नहीं आया है?'

दंगाइयोंमेंसे एक बोला—'वह मुस्लिम युवक इधरसे ही आया है, कहाँ चला गया? क्या भूमिमें समा गया?'

वृद्धने कहा—'मेरी बातपर विश्वास करो। वह यहाँ नहीं है। चाहो तो घरकी तलाशी ले लो।'

दंगाइयोंने वृद्धकी बातपर विश्वास कर लिया और वे शीघ्र आगेकी ओर बढ़ गये।

उनके चले जानेपर वृद्धने युवकको बाहर निकाला और उसे भोजन कराया।

युवकने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—'आप मनुष्य नहीं देवता हैं। भगवान् आपका भला करें।'

वृद्धने कहा—'इसमें भलाईकी क्या बात है, मैंने अपना कर्तव्य पूरा किया है। विपद्‌में पड़े हुएकी सहायता करना मानव-धर्म है। अभी दंगा पूरी तरहसे शान्त नहीं हुआ है। तीन-चार दिन मेरे पास ही रहो; पर अपना वेश हिंदूका बना लो ताकि कोई संदेह न करे। कोई पूछेगा तो कहूँगा कि यह मेरा भतीजा है जो मिलने आया हुआ है।'

युवकने वृद्धकी बात मानकर धोती-कमीज पहन लिया और तिलक लगा लिया।

तीन-चार दिन वह वहीं रहा और फिर दंगा शान्त होनेपर अपने घर चला गया।

यह है आदर्श मानवताका ज्वलन्त दृष्टान्त।

—प्रा० श्याममनोहर व्यास (एम्० एस् सी, बी० एड्)

(२)

अद्भुत ईमानदारी

दुनिया आजकल जहाँ पैसे-पैसेके लिये हत्या करनेसे नहीं चूकती है, वहाँ मुझे एक गरीब ताँगेवालेकी अद्‌भुत ईमानदारीको देखकर चकित होना पड़ता है। यह घटना बिल्कुल सत्य है। एक सज्जन किसी कामके लिये बारह हजार रुपयेका एक सूटकेस ले ताँगेमें बैठकर जा रहे थे। गन्तव्य स्थानपर पहुँचे तो उन्होंने जल्दीमें और सारा सामान तो उतार लिया, किंतु उस बक्सको भूल गये। ताँगेवालेने भी ध्यान नहीं दिया। कुछ दूर जानेके बाद उसने पीछे

मुड़कर देखा तो एक बक्स पड़ा था। उस बक्सको जब उसने खोला तो वह देखकर चकित रह गया।

पर उसने अपने मनपर काबू करके उसे जयपुरस्थित आदर्शनगर थानेमें जमा करा दिया। बक्सपर उन सज्जनका नाम लिखा था। पुलिसने पता लगाकर उन्हें सूचना दी। वे घबराये हुए आये परंतु रुपये गिननेपर रकम पूरी पायी गयी।

उक्त सज्जनने उस ताँगेवालेको इनाम देना चाहा; पर उसने लेनेसे इन्कार कर दिया। बहुत अनुरोध करनेपर उसने केवल दस रुपये लेना स्वीकार किया। ईमानदारी स्वयं ही एक बड़ा इनाम है। —रमेशपुरी जयपुर

(३)

राजाकी सच्ची सहानुभूति और न्याय

भावनगर राज्यके राजा भावसिंहजीके राज्य-कालका प्रसंग है। उस राज्यके मालवाव गाँवमें उस समय एक जबर्दस्त थानेदार था। किसानोंसे बोवनी छुड़ाकर राजाके वहाँ प्रवासके समय राजाके डेरेसे अपने घरतक बाजारमें बरसती वर्षामें उनसे रास्ता बनवाया। किसानोंकी बाड़ीसे साग-सब्जी और मुफ्तमें दूध मँगवाया।

गाँवमें अगुआ समझे जानेवाले मेघजी भांडाणी किसी कामसे बाहर गये हुए थे। घर लौटनेपर उन्हें समाचार मिला कि खेतोंमें बोवनी नहीं हुई। थानेदारकी बेगारसे एक भी किसानको फुरसत नहीं मिली।

मेघजी भाईने गाँवके किसान भाइयोंको इकट्ठा किया और त्रापज बंगलेमें आकर ठहरे हुए राजाके पास शिकायत करने चले। सिरपर मिट्टीके गमलोंमें सुलगती आगकी सिगड़ी रखकर लगभग तीस आदमी त्रापज बंगलेपर पहुँचे। राजा तो इतने किसानोंको इस प्रकार आये देखकर सहम गये। सिगड़ियाँ नीचे रखवायीं और सबको ऊपर बंगलेमें ले जाकर पूछ-ताछ की।

मेघजी भाई तथा दूसरे किसानोंने राजाको सब बातें बतलायीं और अन्तमें कहा कि 'हम किसानोंको बोवनी छोड़कर बेगारमें जाना पड़े और थानेदार आपके खेमेसे आरामसे घर जाय, इसकी सुविधा हमें करनी पड़े। आप मालिकका यदि यही हुक्म हो तो नवाब या गायकवाड आदिके राज्यमें जमीन है। हम अपना डेराडंडा उठाकर वहाँ चले जायँ।'

इसी बीच राजा भावसिंहजीके लिये व्यालू (नाश्ता) करनेकी सूचना आयी। परंतु अपनी प्रजाके लोग भूखे हों और वे खायें—यह सहृदय राजासे कैसे होता? किसानोंके लिये लपसी बनवाकर उन्हें भोजन करानेका आदेश हुआ और टेलीफोनद्वारा भावनगरसे वसूली अधिकारीको बुलाकर किसानोंकी शिकायत बाबत जाँच करनेकी उनको आज्ञा दी गयी।

उस समय पक्की सड़कें नहीं थीं, अतएव वसूली अधिकारीको कुण्डलातक ट्रेनमें और वहाँसे महुआ घोड़ा-गाड़ीमें। वहाँके व्यवस्थापकको साथ लेकर मालवाव पहुँचनेमें दो दिन लगते, अतएव राजाने दो दिन धीरज रखनेके लिये किसानोंसे विनय की।

व्यवस्थापकको लेकर वसूली अधिकारी वहाँ पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपनी आँखोंसे पक्का बना हुआ रास्ता देखा। थानेदारको साग-सब्जी और मुफ्त दूध पहुँचानेवाले ही किसानोंकी गवाहियाँ लीं और चौबीस घंटेके अंदर ही थानेदारको मालवाव छोड़कर चले जानेका आदेश दे दिया। किसानोंकी उचित माँगका यह परिणाम भावनगरमें सरकारी जाँचसे तुरंत हो गया। (अखण्ड आनन्द)

—नारायणजी गो० कल्सारकर

(४)

भगवान्‌ने रक्षा की

सन् १९६२ की बात है। मैं उस समय भक्तिनगर रेलवे स्टेशनपर रिलीविंग ए० एस्० एम्० के पदपर काम करता था। मेरे पड़ोसमें एक मारवाड़ी सद्गृहस्थ रहते थे। उनके यहाँ एक सज्जन अपनी माताजीके साथ आये हुए थे और वे द्वारकाजी जाना चाहते थे। मेरे पड़ोसी महोदय किसी कारणवश उनके साथ जा नहीं सकते थे, अतः उन्होंने मुझे साथ जानेका अनुरोध किया। मैं अपनी धर्मपत्नी, माताजी और दादीजीको साथ लेकर उनके साथ रवाना हो गया।

प्रभुकृपासे मुझे बचपनसे नाम-स्मरणका अभ्यास था। चलते समय मैं मन-ही-मन 'श्रीराम जय राम जय जय राम' उच्चारण करता और उसी ध्वनिकी तालपर मेरे पैर पड़ते। रेलगाड़ीमें पहियोंकी जो खट-खटकी आवाज आती उसके तालपर मेरे हृदयमें 'श्रीराम जय राम जय जय राम' का उच्चारण चलता था। अस्तु,

हमलोग प्रातः ८॥ बजे द्वारकामें गोमतीपर स्नान करने गये। इस समय तट खाली था। नदीमें केवल कमर-तक जल था। मैं अपनी पत्नी तथा उक्त सज्जनके साथ

नहा रहा था, उसी समय यह निश्चय किया गया कि यहाँ पानी नहीं है, चलें उस पार पाण्डवोंके पञ्च कुएँपर हो आयें। नदीका पाट लगभग एक फर्लांग था। हमलोग तीनों नदीके बीचमें पहुँचे होंगे कि समुद्रकी ज्वारका पानी आना शुरू हो गया और देखते-देखते ही हमारे सिरतक आ गया। तैरना न जाननेके कारण हमलोग नदीकी धारामें बह चले। अवश्य ही हमने एक दूसरेके हाथ पकड़ रक्खे थे, इस कारण बिछुड़े नहीं; साथ रहे। उक्त सज्जनने कहा, 'भाई! आपको तैरने नहीं आता हो तो आप मेरी पीठपर आ जाइये, मैं किनारे ले चलूँगा।' हमने वैसा ही किया, मैंने उनकी कमर पकड़ी और धर्मपत्नीने मेरी। वे किनारेकी ओर जानेकी कोशिश करने लगे परंतु हमारे बोझको वे सँभाल नहीं सके। उन्होंने एक डुबकी खायी और वे 'बचाओ, बचाओ' चिल्लाने लगे। मैंने उनकी कमर छोड़ दी, फिर तो वे किनारेकी ओर तैरते हुए ऐसे दौड़े, मानो जीवन-दान मिल गया हो।

अब मैं और मेरी श्रीमतीजी प्रवाहके साथ बहने लगे। पर प्रभु-कृपासे न तो मैंने डुबकी खायी, न मेरी श्रीमतीने घबराकर मुझे पकड़ा ही। बहते हुए चारों ओर नजर दौड़ायी। किनारा बहुत दूर छूट गया था। कोई बचानेवाला न था। मैंने पत्नीसे कहा, 'अब तो हमलोग डूबकर मरनेही वाले हैं, गनीमत है दोनों साथ हैं। पर अब भगवान्‌को रटते हुए ही मरेंगे।' बस, बहते हुए ही 'श्रीराम जय राम जय जय राम'की धुन जोर-जोरसे चालू हो गयी। यह सब कैसे हुआ, इसका तो प्रभुको ही पता है, पर हुआ अवश्य। धुन चालू हुए आधी मिनट हुई होगी कि मेरे दाहिने पैरका अंगूठा किसी नुकीले पत्थरसे टकराया, जिससे हमारा बहना भी रुक गया। इसी बीच हमने देखा लगभग दस कदमके फासलेपर एक छोटी-सी नाव लिये दो बच्चे, जिनकी उम्र बारह-चौदह सालकी होगी, हमारे समीप आ रहे हैं। बस, तुरंत आकर उन्होंने हम दोनोंको नावपर चढ़ा लिया। नाव किनारेकी ओर चली। वे सज्जन जो किनारेकी ओर जा रहे थे, उन्हें भी कुछ ही दूर जाकर नावपर ले लिया गया और हम तीनों सकुशल किनारेपर पहुँच गये। हमारी माताजीके तो चिन्ताके मारे प्राण कण्ठागत-से रहे थे। किनारेके लोग उनसे कह रहे थे। ज्वारका पानी बड़े जोरका होता है कि कल ही एक पति-पत्नीकी जोड़ी बह गयी थी।

सबसे कुशलपूर्वक मिलनेके बाद हम उन प्राण बचानेवाले बालकोंको देखने लगे, पर वे तो लापता हो गये थे। बहुत खोजनेपर भी न वे बच्चे मिले और न नैया ही दिखायी दी।

अब भी जब कभी मुझे इस घटनाका स्मरण होता है तो प्रभुकी दयालुता और महिमासे मेरा शरीर रोमाञ्चित हो उठता है। धन्य प्रभु! —द० कृ० कोटान्नै, जामवंथली

(५)

कैंसरकी दवाका स्पष्टीकरण

'कल्याणके पिछले अङ्क ५ पृष्ठ ९५६ में कैंसरकी दवा छपी थी, उसके सम्बन्धमें लेखकके पास बहुत-से पत्र पहुँचे हैं—लेखकने निम्नलिखित स्पष्टीकरण लिखकर भेजा है—'मैंने कृषिविषयक अध्ययन किया है। मैं वैद्य नहीं हूँ। रोगियोंको इस प्रयोगसे लाभ हुआ था—यह देखकर जनताको लाभ हो, इस दृष्टिसे मैंने वह नुस्खा प्रकाशित कराया था। जिज्ञासाओंका यह उत्तर है—

(१) सुबह-शाम ३०-३५ तुलसीके पत्ते लेकर पाँच तोले अन्दाज दहीमें मसलकर अथवा दोनोंको पत्थरकी शिलापर पीसकर एकमेक कर लिया जाय और फिर पी लिया जाय। तुलसी श्याम या कृष्ण होनी चाहिये। दही गायके दूधका घरमें जमाया हुआ हो।

(२) एकसे डेढ़ कीलो दूधका या दही, जो अपनी प्रकृतिके अनुकूल हो, दिनभरमें लेना चाहिये। दहीमें कुछ जल मिलाकर उसे छाछके माफिक बना लेना चाहिये। दही गायके दूधका घरमें जमाया हुआ हो।

(३) तेल, लालमिर्च और तली हुई चीज नहीं खानी चाहिये।

(४) अपने इष्टदेवका स्मरण करना और मनमें ऐसी श्रद्धा रखनी चाहिये कि मैं जरूर अच्छा हो जाऊँगा।

(५) समयके सम्बन्धमें मेरी जानकारी नहीं है, जबतक इच्छा हो लिया जाय। पर तीन महीनेमें कोई लाभ न हो तो छोड़ देना चाहिये। यों पंद्रह दिनोंमें ही लाभका अनुभव होना चाहिये।*

पुरुषोत्तमलाल बावीसी

'विराम', पो० जोरावरनगर, (जि० सुरेन्द्रनगर, गुजरात)

* हमारा अनुभूत नहीं है अतएव वैद्य-डाक्टरसे पूछकर प्रयोग करें—सम्पादक

रजि० सं० एल्० १७५

श्रद्धेय श्रीश्रीपाद दामोदर सातवलेकर महोदयके प्रति श्रद्धाञ्जलि

परम श्रद्धेय प्रसिद्ध महान् पण्डित वयोवृद्ध महात्मा श्रीश्रीपाद दामोदर सातवलेकर महोदयका १०१ वर्षकी आयुमें अकस्मात् देहावसान हो गया। आप वेदोंके परम निष्ठावान् प्रकाण्ड विद्वान्, मर्मज्ञ, व्याख्याता और प्रचारक थे। अबतक लगभग ४०० ग्रन्थ लिख चुके हैं। इतनी बड़ी आयुमें भी आप ऋग्वेदपर टीका लिख रहे थे। गीताप्रेस और 'कल्याण' के प्रति आपकी बड़ी ही कृपा तथा प्रीति थी। 'कल्याण' में आप सदा ही लिखा करते थे। कुछ ही वर्षों पूर्व गीताप्रेस, गोरखपुर पधारनेकी भी कृपा की थी। उनके निधनसे भारतके वैदिक विद्यागगनका एक महान् देदीप्यमान सूर्य ही अस्त हो गया। हम उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं।

आवश्यक नम्र निवेदन

'कल्याण'के ग्राहकोंके रजिस्टर नये बदलने आवश्यक हैं। सभी ग्राहकोंके पते रजिस्टरमें शुद्ध लिखे जायँ जिससे उनको अङ्क सुरक्षित रूपसे मिल जाय—इस दृष्टिसे कल्याणके सभी प्रेमी ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि वे अपना पूरा पता साफ-साफ हिंदीमें लिखकर भेजें और बंगाल, आसाम, उड़ीसा, आन्ध्र, केरल, मैसूर, मद्रास आदि प्रान्तके ग्राहकोंसे अंग्रेजीमें पता लिखकर भेजनेकी प्रार्थना है। पता लिखते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखनेकी कृपा करें।

'कल्याण'के चार प्राप्य विशेषाङ्कोंके मूल्यमें विशेष छूट

विशेषाङ्क	पृष्ठ-संख्या	चित्र बहुरंगे	दुरंगा	इकरंगा	रेखाचित्र	मूल्य
१—मानवता-अङ्क	७०४	३९	१	१०१	१९	रु० ७.५०
२—संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क	७०४	१७	१	१२	१३८	,, ७.५०
३—संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क (भगवान् श्रीकृष्णकी मंगलमयी लीला-कथाएँ)	६८२	१७	१	६	१२०	,, ७.५०
४—धर्माङ्क (सजिल्द)	७००	१४	१	४	८१	,, ८.७५
	२७९०	८७	४	१२३	३५८	रु० ३१.२५

उपर्युक्त चारों विशेषाङ्क एक साथ मँगानेपर मूल्य २५) पचीस रुपये मात्र लिया जायगा। डाकखर्च हमारा होगा।

व्यवस्थापक—'कल्याण' गीताप्रेस, गोरखपुर